भगवद्गीता प्रश्नोत्तरी

लेखक

श्री वेदान्ती जी महाराज

छोटी पियरी, काशी

शारदा प्रतिष्ठान

सी .के. १५/५१ सुड़िया, बुलानाला

वाराणसी –१

मूल्य—एक रुपये पच्चीस नये पैसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवेदन

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

संसार के सभी प्राणी सदा के लिए अमर होना चाहते हैं, जो स्वर्ग का अमृत पान करने पर भी सम्भव नहीं है। क्योंकि 'क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति, अर्थात पुण्य क्षीण होने पर देवता को भी शरीर छोड़कर मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ता है। अतः सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान भगवान कृष्ण ने जन्ममरण के चक्र से सदा के लिए छूटने की इच्छावाले प्राणियों के लिए सर्व उपनिषदों को गऊ बनाकर तथा अर्जुन को बछड़ा बनाकर और स्वयं गोपाल बनकर गीता रूपी दुग्ध निकालकर रख दिया है जिसको पान करने से पुनर्जन्म की अत्यन्त निवृत्ति हो जायेगी। इस कारण गीतामृत स्वर्ग के अमृत से श्रेष्ठ है। अर्जुन का पुनः पुनः प्रश्न करना गऊ को पिन्हाना और भगवान कृष्ण का उत्तर देना ही गउ से दूध निकालना है।

श्रीमान् परमपूज्यनीय श्री सद्गुरु महाराज श्रीस्वामी वेदान्तीजी महाराज ने हम भक्तों के उपर अत्यन्त कृपालु होकर श्रीमद्भगवद्गीताको इस प्रकार प्रश्नोत्तर रूप में सरल कर दिया है कि इन प्रश्नों एवं उत्तरों का मनन-निदिध्यासन कर अपना जीवन कृतार्थ कर सकते हैं। इसके अन्त में विचार सागर प्रश्नोत्तरी जोड़ देने से इसका महत्व उसी प्रकार बढ़ गया है जैसे वस्त्र के ऊपर आभूषण पहन लेने से वस्त्र का महत्त्व बढ़ जाता है।

आशा है प्रेमी जन इस 'भगवद्गीता प्रश्नोत्तरी' एवं विचार सागर प्रश्नोत्तरी से अवश्य लाभ उठायेंगे।

निवेदक—

मुखिया भगत बालचन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमपूज्य गुरुदेव जी श्री १०८ श्री वेदान्ती जी महाराज

भगत बालचन्द तोलाराम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
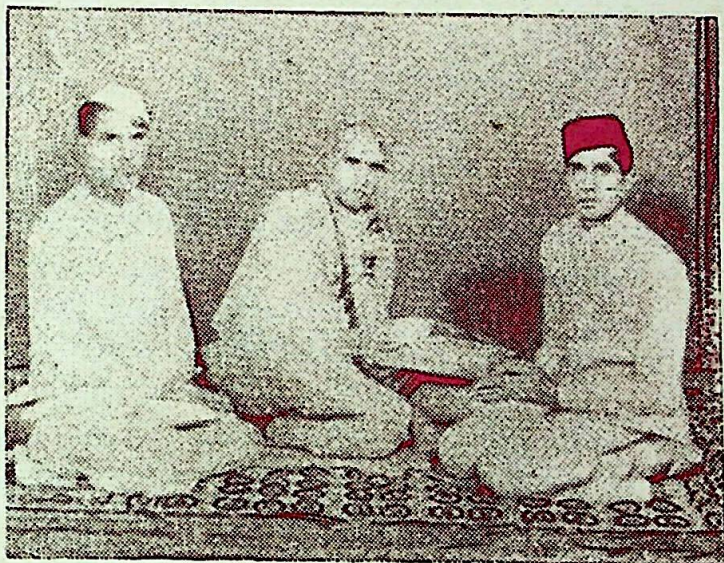
❀ जै सीताराम ❀
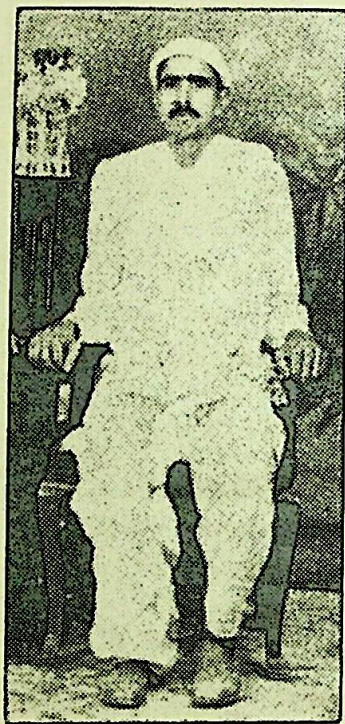
जन्म—
२२, भाद्र,
सं० १९५० वि०

मृत्यु—
१, ज्येष्ठ
सं० २००५ वि०

स्व० सेठ हरूमल सुपुत्र सेठ राजूमल
दौलतपुर, जिला नवाबशाह,
(सिन्ध—पाकिस्तान)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

भगवद्गीता प्रश्नोत्तरी

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विनानपश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ॥

अर्जुन का प्रश्न १ :— युद्ध करके भीष्मादिक को मारना हमारे लिये धर्म है या अधर्म ?

भगवान कृष्ण का उत्तर :— धर्म की रक्षा करने के लिए, अन्यायियों से युद्ध करना क्षत्री के लिए पाप नहीं है, धर्म है क्योंकि क्या धर्म है और क्या अधर्म है इसका निर्णय शास्त्र द्वारा ही होता है और शास्त्र में क्षत्री के लिये धर्म युद्ध करना कर्तव्य बतलाया गया है परन्तु रागद्वेष से रहित अपनी भावना शुद्ध होना चाहिये। जैसे जज फाँसी देने पर भी पाप का भागी नहीं होता क्योंकि वह राग द्वेष से रहित है। वह केवल सरकारी कानून का पालन करता है और अपने को सरकारी नौकर मानता है। उसी प्रकार हे अर्जुन तुम ईश्वर आज्ञा समझ कर और अपने को ईश्वर का सेवक समझकर युद्ध करो क्योंकि राजा को धर्म युद्ध करने के लिए ईश्वर आज्ञा देता है। शास्त्र को ही ईश्वर आज्ञा समझना चाहिये। जैसे तुम्हारा सिपाही तुम्हारी आज्ञा से युद्ध करता है उसी प्रकार तुम ईश्वर की आज्ञा से ईश्वर के सिपाही बन कर ईश्वर के लिये युद्ध करो तो युद्ध में ब्राह्मणों की हिंसा करने पर भी तुम को पाप नहीं लगेगा और यदि ईश्वर की आज्ञा उल्लंघन करके मन की आज्ञा मानोगे तो पाप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के भागी बनोगे। जैसे रोग से द्वेष करना चाहिये रोगी से नहीं उसी प्रकार अधर्म से द्वेष करना चाहिये पापी से नहीं। जैसे डाक्टर फोड़ा का आपरेशन करता है और रोगी की भलाई चाहता है, यद्यपि फोड़ा चीरने से रोगी बहुत दुखी होता है परन्तु परिणाम अच्छा होता है, उसी प्रकार अधर्मरूपी फोड़े को नाश करने के लिए युद्ध रूपी अस्पताल में अधर्म रूपी फोड़े को बढ़ाने में सहायक अँगों का निर्णय होकर निश्चिन्तता पूर्वक आपरेशन करो चाहे वे उत्तम अंग हों या अधम। सर्वभूतान्तरात्मा मुझ कृष्ण का स्थूल ब्रह्माण्ड देह है और पिंड मेरी स्थूल देह के अंग हैं। फिर मेरी आज्ञा से मेरे अधर्म पक्षपाती अंगों का आपरेशन करने में तुमको क्यों पाप लगेगा।

यद्यपि भीष्मादि धर्मात्मा होते हुए कौरवों का अन्न खाने के कारण उनकी सहायता करना कर्तव्य समझ कर पाण्डवों के हितचिंतक होने पर भी पाण्डवों के विरुद्ध अन्यायी दुर्योधन की सहायता करने के लिए विवश हो रहे हैं तब भी मारने योग्य हैं क्योंकि उनको मारे बिना अधर्म के पक्षपाती दुर्योधन का मारना असम्भव है। अतः भीष्मादि को मारना भी पाप नहीं।

अर्जुन का प्रश्न २ :—हे मधुसूदन ! यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि पृथ्वी भर का राज्य ही नहीं बल्कि स्वर्ग का भी राज्य मिलने पर अहंता ममता जनित शोक रुप दुःख की अत्यन्त निवृत्ति असम्भव है क्योंकि दृश्य मात्र अहंता ममता द्वारा जन्म मरणादि सर्व दुःखों का कारण है। अतः मुझे अपना शिष्य जानकर कृपा करके मूल सहित सर्व दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति तथा परमान्द की प्राप्ति रूप श्रेय (मोक्ष) का उपदेश कीजिये।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! समस्त दुःखों का मूल जन्म है और जन्म के मूल शुभाशुभ कर्म हैं और शुभाशुभ कर्मों का मूल राग द्वेष है और रागद्वेष का मूल विपरीत ज्ञान है और विपरीत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञान का मूल मुझ सर्व भूतान्तरात्मा परमात्मा का अज्ञान है। अतः ज्ञान के बिना दुःखों का अत्यन्त नाश उसी प्रकार असम्भव है जैसे सूर्य के बिना रात्रि का नाश असम्भव है। जैसे कोई सोया हुआ राजा स्वप्न में अपने को भिखारी देखता है उसी प्रकार मेरा अंश जीव अज्ञान निद्रा में सोया हुआ जन्म मरणादि के भ्रम मात्र दुःखों को देख रहा है। जैसे निद्रा ने राजा में यह भ्रममात्र विपरीत ज्ञान पैदा कर दिया कि मैं स्वप्न में हूँ और भिखारी हूँ उसी प्रकार सर्व भूतान्तरात्मा परमात्मा के अज्ञान ने चेतन अमल सहज सुखराशी अविनाशी मेरे सनातन अन्श जीव में भ्रममात्र विपरीत ज्ञान पैदा कर दिया कि मैं जन्ममरण धर्म वाला प्राणी हूँ। अतः हे भक्तशिरोमणि अर्जुन! तुम यह विपरीत अभिमान छोड़ो कि मैं कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी मरने मारने वाला पंच क्लेशों से युक्त परिच्छिन्न प्राणी हूँ। जैसे स्वप्न में अपने को भिखारी देखने वाले राजा को भिखारी का मिथ्या अभिमान छोड़कर मैं राजा हूँ ऐसा अभिमान जब होगा तभी स्वप्नके भिखारीपन का दुःख नाश होगा, उसी प्रकार तुमको भी अपने परमार्थ स्वरूप का अभिमान करना होगा तब स्वप्नवत जन्म मरणादि समस्त दुःखों को अत्यन्त निवृत्ति होगी। तुम्हारा तथा सर्व जीवों का स्वरूप देहों के नाश से नाश नहीं होता क्योंकि व्यष्टि समष्टि समस्त स्थूल सूक्ष्म कारण देह कपड़ों की भाँति जीवों के वास्तविक स्वरूप से प्रथक हैं अर्थात् मृगजलवत प्रातिभासिक व्यावहारिक सत्ता वाले होने से अध्यस्त हैं और तुम्हारा तथा भीष्मादि का शुद्ध स्वरूप अधिष्ठान है। अतः तुम अधिष्ठान हो और देह अध्यस्त है फिर देहों के नाश से आत्मा का नाश मानकर क्यों शोक से व्याकुल हो रहे हो? समस्त शरीर स्वप्न व मृगजल वत आदि अन्त में शून्य होने से मध्य में भी भ्रममात्र प्रतीत होने पर भी नहीं हैं, ऐसा दृढ़ निश्चय करो। ऐसा निश्चय होने पर ही सर्व दुःखों से छुटकारा होगा। जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देह व उनके धर्म सुख दुःखादि स्वप्नवत मिथ्या हैं ऐसा निश्चय कर लिया तो सुख दुःख से कभी हानि लाभ नहीं मानना चाहिये क्योंकि अध्यस्त अधिष्ठान को क्या हानि लाभ पहुँच सकता है। देह व आत्मा का अध्यस्त अधिष्ठान सम्बन्ध भी अज्ञान पर्यन्त है। अज्ञान निवृत्त होने पर निर्द्वैत परमानन्द घन शुद्ध बुद्ध मुक्त सहज निर्विकल्प बोध तुम्हारा अवाङ्मनसगोचर स्वरूप सर्व सम्बन्धों से रहित शेष रहता है जिस परमार्थ सत्ता रूप महाजाग्रत को स्वप्न के शस्त्र, अग्नि और जल न काट सकते हैं, न जला सकते हैं और न भिगा सकते हैं क्योंकि वहाँ समस्त स्वप्नप्रपंच का अत्यन्ताभाव है। अर्थात् जैसे इस स्वप्नवत जाग्रत में स्वप्न का अत्यन्ताभाव है उसी प्रकार इस स्वप्नवत जाग्रत का तुम्हारे परमार्थ स्वरूप में अत्यन्ताभाव है। जैसे इस स्वप्नवत व्यावहारिक जाग्रात में स्थित होकर कोई जीव प्रातिभासिक स्वप्न के नरों को मार काट नहीं सकता है और न उनको मारने के लिए किसी को प्रेरणा कर सकता है और न स्वप्न नरों के द्वारा जाग्रत का अभिमान करनेवाला पुरुष मारा काटा जा सकता है क्योंकि जाग्रत पुरुष की दृष्टि के सामने स्वप्न का अत्यन्ताभाव है, उसी प्रकार जिस के अज्ञान से यह स्वप्नवत जाग्रत दृश्य प्रतीत हो रहा है उस परमार्थ स्वरूप सच्चिदानन्द सर्वाधिष्ठान सर्वातीत निज स्वरूप सर्व भूतान्तरात्मा में स्थित होकर अज्ञान जनित भ्रममात्र इस स्वप्नवत जाग्रतनरों को कोई कैसे मारे या कैसे किसी को मारने की प्रेरणा करे क्योंकि परमार्थ सत्ता में जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंचों का सूर्य में अन्धकारवत अत्यन्ताभाव है। अतः तुम अपने को मारनेवाला मत समझो और मुझे मरवाने वाला भी मत समझो तथा कौरवों को मरने वाला मत समझो क्योंकि सबकी आत्मा जन्म मृत्यु आदि षटविकारों से रहितनित्य एकरस असंग व्यापक है। घटादिवत देह नाना और परिच्छिन्न हैं तथा घटाकाशवत देही महा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काशवत व्यापक मुझ परमात्मा से अभिन्न है। देहों के कारण देही भी घटाकाशों की भाँति नाना इव प्रतीत हो रही हैं वास्तव में नाना हैं नहीं। अतः देही आत्मा और मुझ परमात्मा में सौपाधिक भेद है स्वरूपतः भेद नहीं। अतः अपने परमार्थ स्वरूप असंग अखंड विभुआत्मा के ज्ञान द्वारा रज्जु सर्पवत नित्त्य निवृत्त दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति करो और तरंग को जैसे जल नित्त्य प्राप्त है उसी प्रकार नित्त्य प्राप्त परमानन्द की प्राप्ति करो क्योंकि बन्ध अध्यस्त होने से ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः।

अर्जुन का प्रश्न ३ :—ऐसे ज्ञान योग में स्थिति कब होगी और ज्ञान योगी स्थित प्रज्ञ जीवनमुक्त के लक्षण क्या हैं।

भगवान का उत्तर :—जैसे निद्रा दूर होने पर ही जाग्रत में स्थिति हो सकती है उसी प्रकार परमार्थ स्वरूप का अज्ञान दूर होनेपर ज्ञान योग में स्थिति होगी अर्थात परमार्थ स्वरूप का साक्षात्कार होगा।

जिसको परमार्थ स्वरूप का साक्षात्कार हो चुका है उसको ही स्थितप्रज्ञ, योगी, ज्ञानी, भक्त, पंडित, महात्मा, त्रिगुणातीत, सन्त अथवा जीवन्मुक्त कहते हैं। त्रिगुणातीत का लक्षण स्वसम्वेद्य होता है। वह मुझ वासुदेव को ही अपनी आत्मा समझता है और समस्त विश्व को मुझ में या अपने में रज्जु सर्प वत अध्यस्त समझता है। अतः उसके निश्चय में अपने सहित सर्व विश्व मुझ वासुदेव का ही स्वरूप है। जैसे स्वर्णसे भिन्न भूषणों का व जलसे भिन्न तरंगोंका अत्यन्ताभाव है उसी प्रकार उस जीवन्मुक्त के निश्चय में निजात्म स्वरूप मुझ वासुदेव से भिन्न समस्त प्रपंच का अत्यन्ताभाव है। जैसे जाग्रत पुरुष जाग्रत स्वरूप के लिए स्वप्न का कोई पदार्थ नहीं चाहता उसी प्रकार वह जीवन्मुक्त अपनी आत्मा के लिये इस स्वप्न वत जगत से कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता। जैसे स्वप्न से जागा हुआ जाग्रत पुरुष स्वप्न के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुख दुख वराग द्वेष से रहित हो जाता है उसी प्रकार परमार्थ सत्ता में जागा हुआ पुरुष इस स्वप्नवत जगत के दुःखादि विकारों से विकारी नहीं होता। जैसे स्वप्न देखने वाले की दृष्टि में जाग्रत का अभाव है और जागे हुये जाग्रत पुरुष की दृष्टि में स्वप्न का अभाव है, उसी प्रकार मोह निद्रा में स्वप्न वत इस भ्रममात्र जगत को देखने वाले अज्ञानियों की दृष्टि में परमार्थ स्वरूप सच्चिदानन्द तत्व का अज्ञान होने से अभाव है और परमार्थ सच्चिदानन्द तत्व में जागे हुए जीवन्मुक्त महात्मा की दृष्टि में इस स्वप्न वत अज्ञान जनित प्रपंच का अत्यन्ताभाव है। प्रपंच में सतबुद्धि और सुख बुद्धि का अभाव हो जाने से उसकी मन इन्द्रियां उसके वश में रहती हैं। वह अपनी आत्मा को निर्विकार साक्षी परमानन्द रूप जान कर कर्तव्य शून्य हो जाता है। वह आत्मा को सदा अक्रिय असंग जानता है चाहे देह लाखों कर्म करता रहे तथा शरीरों को सदा सक्रिय देखता है चाहे सर्व कर्मों को त्याग कर वे उदासीन हो जायें क्योंकि जैसे घट मृत्तिका रूप है उसी प्रकार शरीर कर्म रूप है। भूषणों में स्वर्ण वत सर्व नाम रूपात्मक प्रपंच में सर्वत्र पंडित ब्रह्म को ही देखता है। कार्य को कारण रूप से देखना ही पंडित का लक्षण है। ब्रह्म निष्ठा द्वारा अज्ञान संशय भ्रम का नाश होने पर ही जीवन्मुक्त होता है। वह स्वतः कर्तव्य शून्य होने पर भी जीवों के परम कल्याण में स्वभाव से रत रहता है क्योंकि सर्व की आत्मा अपने को जानता है और आभास रूप से अपने को ही सर्व जीवों के रूप में मानता है। उस योगी की दृष्टि में सोना मिट्टी पत्थर समान है अर्थात् आत्मा से भिन्न उसकी दृष्टि में किसी की सत्ता शेष नहीं रहती है। वह पापी धर्मात्मा सब को वासुदेव मय जानता है। वह अपने परमार्थ स्वरूप आत्मा को विवर्त रूप से सर्व रूप जानता है। वह व्यावहारिक दृष्टि से प्रारब्ध पर्यन्त कल्पित देह दृश्य में अहंता ममता से रहित, मानापमान में समान तथा शत्रु मित्र दोनों का हित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करने वाला होता है । वह देहों के योग व्योग जन्म मरण को भ्रम मात्र जानकर हर्ष शोक से रहित होता है । वह आकाश वत अपनी आत्मा को व्यापक तथा तीनों गुणों से असंग जानता है क्योंकि गुणों को अध्यस्त और आत्मा को अधिष्ठान मानता है। ब्रह्म चिन्तवन उनका स्वभाव होता है और उनको विषयों में सुख बुद्धि तथा सत्य बुद्धि उसी प्रकार नहीं होती जैसे मृगजल में मक्खन बुद्धि और सत्य बुद्धि बुद्धिमान नहीं करता । उनका अन्तःकरणमल विक्षेप आवरण से रहित दैवी सम्पदा से युक्त होता है। वह प्रलय के दुःखों से भी अपनी आत्मा में क्षोभ नहीं देखता। वह अपने परमार्थ स्वरूप मुक्त वासुदेव को सर्व धर्मों से उसी प्रकार शून्य जानता है जैसे मरु भूमि मृगजल से शून्य होती है। हे अर्जुन तुम भी सर्व धर्म शून्य निर्द्वैत परमानन्द निष्प्रपंच मुक्त वासुदेवमें आत्मबुद्धि करके निष्पाप तथा शोक रहित हो जाओ क्योंकि मुक्त वासुदेव में आत्म भाव किये विना कोई शोक मोह से रहित नहीं हो सकता और विना शोक रहित हुए स्थित प्रज्ञ नहीं बन सकता। स्थितप्रज्ञ जीवन्मुक्त अपने निरुपाधिक शुद्ध स्वरूप कूटस्थ का मुक्त सच्चिदानन्द महाकाशवत असंग व्यापक वासु-देव से उसी प्रकार मुख्य समानाधिकरण समझता है जैसे घटाकाश का महाकाश से मुख्य समानाधिकरण होता है तथा कारण अज्ञान और अज्ञान जनित समस्त स्थूल सूक्ष्म प्रपंच का मुक्त निष्क्रिय निर्वि-कार अखंड असंग चेतन से उसी प्रकार बाध समानाधिकरण समझता है जैसे ठूँठ में प्रतीत होनेवाले पुरुष का ठूँठ से, रज्जु सर्प का रज्जु से, शुक्तिरजत का शुक्ति से, मृगजल का मरुभूमि से, नीलमा का आकाश से तथा स्वप्न का स्वप्नसाक्षी से बाध समानाधिकरण होता है। स्थित प्रज्ञ जीवन्मुक्त के लक्षण बतलाते हुए भगवान कृष्ण ने भगवद्गीता अध्याय दो के श्लोक ११ में व अ. ४ श्लोक १९ व अ. ५ श्लोक १८ में उसको पंडित कहा है और अ. २ श्लोक ५५, ५६,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५७; ५८, ६१ में उसको स्थित प्रज्ञ तथा उसी अध्याय के श्लोक ६६ में उसको मुनि कहा है और अ. ३ श्लोक १७, १८ में उसीको सन्तुष्ट बतलाया है और अ. ५ श्लोक २५, २६, २८ में उसीको क्रमशः ऋषि, यति, मुनि और मुक्त बतलाया है और अ ४ श्लोक १८ में उसी स्थित प्रज्ञ को ही बुद्धिमान और श्लोक १६ में ज्ञानी और श्लोक १९ में महात्मा बतलाया है और अ. ९ श्लोक १३ में भी महात्मा कहा है, और अ. ६ श्लोक २९ में उसी को समदर्शी और इसी अध्याय के ८ वें तथा अन्य श्लोकों में उसीको योगी कहा है और अ. १२ के श्लोक १४ तथा अन्य श्लोकों में उसी को भक्त बतलाया है और अ. १४ श्लोक २५ में उसीको गुणातीत बतलाया है और अ १५ श्लोक ५ में उसीको अमूढ़ और श्लोक १० में उसीको ज्ञानचक्षुष और श्लोक १९ में असंमूढ़ और श्लोक २० में बुद्धिमान और कृतकृत्य बतलाया है, और अ. १८ श्लोक १० में उसीको त्यागी और श्लोक १२ में सन्यासी बतलाया है और उसीको अध्याय २ श्लोक १६ व अ. ४ श्लोक ३४ में तत्वदर्शी नाम से निर्देश किया है। भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! कुछ लक्षण ऐसे हैं जो सिद्ध और साधक दोनों में पाये जाते हैं और कुछ लक्षण केवल सिद्ध जीवन्मुक्त महात्मा में ही पाये जाते हैं अन्यत्र नहीं। समस्त भूत प्राणिया का अधिष्ठान होने के कारण सर्व भूतों को अपने अन्दर और विवर्त रूप से स्वयं ही सर्वरूप होने से अपने को सर्व भूतों के अन्दर देखना समदर्शी जीवन्मुक्त का प्रधान लक्षण समझना चाहिये।

अर्जुन का प्रश्न ४ :—कम से कम कितनी आयु शेष रहने पर ब्रह्मनिष्ठा अवश्य हो जाना चाहिये जिससे देह नाश के अनन्तर पुनर्जन्म की सम्भावना न रहे।

भगवान का उत्तर :—जैसे मरू भूमि का साक्षात्कार होते ही तुरन्त मृगजल की नदी में डूबने का भय और उससे पार होने की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व
६५३

कामना का अत्यन्ताभाव हो जाता है चाहे वह मृगजल कुछ काल तक या अधिक काल तक प्रतीत होता रहे चाहे गायब हो जाये उसी प्रकार आत्मा का मुक्त सच्चिदानन्द ब्रह्म रूप से साक्षात्कार होने पर अज्ञान जनित स्वप्नवत अध्यस्त देह की प्रतीति चाहे उसी क्षण नष्ट होजाये तब भी उस ब्रह्मनिष्ठ का पुनर्जन्म नहीं हो सकता। जैसे निद्रा नाश होते ही स्वप्न का भय नहीं रहता उसी प्रकार अविद्या के नष्ट होते ही पुनर्जन्म की कथा समाप्त हो जाती है। हे अर्जुन मेरे उपदेश को तत्परता से प्रीति पूर्वक मुमुक्षु बन कर श्रवण करके शीघ्र अविद्या को नाश कर डालो। तत्पश्चात तत्काल देह नाश हो जाने पर भी पुनर्जन्म का कोई भय न रहेगा।

अर्जुन का प्रश्न ५ :—यदि कर्म योग से ज्ञानयोग श्रेष्ठ है तो मुझे कर्मयोग का उपदेश क्यों करते हो।

भगवान का उत्तर :—जैसे माता अपने रोगी बालक को केवल दूध पीने को देती है और स्वस्थ बालक को हल्वा पूड़ी मलाई खाने को देती है उसी प्रकार मैं अधिकारी भेद से कहीं कर्मयोग का उपदेश करता हूँ और कहीं ज्ञान योग का। कर्मयोग के अधिकारी जन अपने अन्तः करण के मल विक्षेप दोषों को दूर करने के लिये कर्म योग किया करते हैं और जिनके अन्तः करण मल विक्षेप से रहित शुद्ध हैं वे ज्ञानयोग के अधिकारी ज्ञान योग किया करते हैं। जो आज कर्म योगी हैं अन्तः करण शुद्ध होने पर वे भी ज्ञानयोग के अधिकारी होकर ज्ञानयोगी बन जाते हैं और आवरण दूर होने पर मुक्त हो जाते हैं। अतः कर्मयोग और ज्ञान योग दोनों ही अधिकारी प्रति कल्याणप्रद हैं। जैसे सिंहनी का दूध सोने के पात्र में ही ठहरता है अन्य पात्रों में फट जाता है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान मल विक्षेप रहित शुद्ध अन्तःकरण में ही आवरण भंग करके मोक्षरूप फल को देता है। जैसे फटे हुए दूध से मक्खन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं प्राप्त हो सकता उसी प्रकार अशुद्ध अन्तःकरण में उत्पन्न हुआ शास्त्री ज्ञान आवरण भंग करके मोक्ष रूप मक्खन नहीं दे सकता. केवल विवाद के काम आ सकता है। अतः कर्मयोग अन्तःकरण शुद्धि के लिए अनिवार्य है। कर्म योगी को अन्तःकरण शुद्धि के लिये कर्म करना चाहिये और ज्ञानयोगी कृतकृत्य जीवन्मुक्त को लोक संग्रह के लिए आभासमात्र कर्म करते रहना चाहिये। जिसका अन्तःकरण मल विक्षेप से युक्त है और वह केवल कर्म के त्याग से मुक्ति चाहे तो असम्भव है क्योंकि मलिन अन्तःकरण वाला यदि कर्म छोड़ देगा तो उसके मल विक्षेप भी दूर नहीं होंगे आवरण दूर होना तो बहुत आगे की बात है। यदि किसी का अन्तःकरण कर्मयोग से शुद्ध हो गया और वह अन्तःकरण के मल विक्षेप को नष्ट करके केवल कर्मयोग के त्याग मात्र से मुक्त होना चाहे तब भी असम्भव है क्योंकि आवरण विना ज्ञानयोग के उसी प्रकार भंग नहीं हो सकता जैसे अन्धकार का बिना प्रकाश के नाश होना असम्भव है और मुक्ति आवरण भंग होने पर ही सिद्ध होती है जैसे स्वप्न से मुक्ति निद्राभंग होने पर ही होगी पहले नहीं। अतः हे अर्जुन! कर्मयोग से अन्तःकरण शुद्ध करो और ज्ञानयोग से मोक्ष प्राप्त करो और फिर कर्म कर्तव्य नहीं परन्तु लोक संग्रह की दृष्टि से तब भी करना चाहिये। अतः कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों का उपदेश कल्याण प्रद है।

अर्जुन का प्रश्न ६ :—यदि आत्मा अकर्ता है तो लोगअपनी आत्मा को कर्ता क्यों मानते हैं।

भगवान का उत्तर :—जैसे निद्रा के कारण चारपाई पर चुप चाप शरीर के पड़े रहने पर भी स्वप्न में ऐसा भ्रम होता है कि मेरा शरीर समस्त पाप पुण्यों का कर्ता है उसी प्रकार अविद्या के कारण जीव स्वप्न वत देह में अभिमान कर लेता है और समस्त कर्मों का कर्ता अपने को समझा करता है यद्यपि उसका परमार्थ स्वरूप निष्क्रिय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्विकल्प एक रस अचल है। जैसे सूर्य के प्रति विम्ब को हिलता देख कर मूर्ख विम्ब सूर्य को भी हिलता हुआ जानता है उसी प्रकार अज्ञानी अन्तःकरण को कर्ता भोक्ता देख कर अपने निष्क्रिय स्वरूप को कर्ता भोक्ता मानता है। हे अर्जुन ! अकर्ता आत्मा को कर्ता मानने में अज्ञान जनित देहाभिमान ही कारण है। सर्व नेत्रों का प्रकाशक सूर्य जैसे देखने क्रिया का करता नहीं है उसी प्रकार समस्त मन बुद्धि तथा इन्द्रियों का प्रकाशक आत्मा किसी क्रिया का कर्ता नहीं है, केवल गुण ही गुण में वर्त रहे हैं क्योंकि कर्ता क्रिया कर्म सब अविद्या जनित गुणों के ही परिणाम हैं।

अर्जुन का प्रश्न ७ :—हे अच्युत पाप कौन कराता है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन जीव को अपने वास्तविक स्वरूप के अविवेक से देहाभिमान होता है और देहाभिमान से पंच विषयों में आसक्ति होती है और आसक्ति से काम क्रोध उत्पन्न होते हैं। जैसे दूध की विगड़ी हुई अवस्था दही है उसी प्रकार कामना में विघ्न पड़ने पर काम ही क्रोध का रूप धारण कर लेता है और धर्माधर्म के विचार को नष्ट करके पापों में लगा देता है। अतः आसक्ति का पुत्र, देहाभिमान का पौत्र तथा निजस्वरूपके अज्ञान का प्रपौत्र काम ही क्रोध का रूप धारण करके पाप का कारण बनता है। याद रक्खो जैसे अग्नि घृत की आहुतियों से तृप्त नहीं होती उसी प्रकार काम भोग भोगने से तृप्त नहीं होता।

हे अर्जुन ! काम जबतक शान्त नहीं होगा तब तक क्रोध का रूप धारण करता रहेगा और जब तक क्रोध का रूप धारण करता रहेगा तब तक पाप कराता रहेगा।

अर्जुन का प्रश्न ८ :—हे जनार्दन ! सर्व दुःखों का मूल पाप है और पाप का मूल काम है। अतः जब तक काम का नाश नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगा तब तक दुःखों से छुटकारा होना असम्भव है। इस कारण से कृपा करके काम के नाश का उपाय बतलाइये।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! जैसे रथ से परे घोड़े हैं और घोड़ों से परे लगाम है और लगाम से परे सारथि (कोचवान) है और सारथि से परे रथ का स्वामी है उसी प्रकार शरीर से परे इन्द्रियां हैं और इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि रूपी सारथि है और बुद्धि से भी परे आत्मा है वह तू है। हे प्रिय सखे! तुम अविवेक के कारण अपने शुद्ध बुद्ध निर्विकार निराकार सच्चिदानन्द आत्मा में अभिमान न करके माया जनित पंच भूतात्मक शरीर इन्द्रिय, मन बुद्धि में अहंता ममता करने लगे हो। इस कारण काम से भयभीत हो रहे हो। देखो निद्रा से मोहित स्वप्न नर स्वप्न के शेर से भयभीत होता है। यदि स्वप्न नर अपना वास्तविक स्वरूप साक्षी जान ले तो स्वप्न के शेर से निर्भय हो जाय क्योंकि साक्षी में अभिमान होते ही वह स्वप्न तथा स्वप्न के शेर को अपना विवर्तरूप से अपना ही स्वरूप समझेगा जिससे स्वप्न शेर का बिना अस्त्र शस्त्र के ही बाध रूप नाश हो जायेगा अर्थात मिथ्या निश्चय हो जायेगा। उसी प्रकार कोई जाग्रत नर अपने वास्तविक स्वरूप जाग्रत साक्षी मुझ सच्चिदानन्द बासुदेव को साक्षात्कार करले तो काम क्रोधादि धर्म और धर्मी समस्म प्रपंच का बाध हो जाय। अतः हे अर्जुन जैसे तू घट से घटाकाश को परे असंग महाकाश रूप जानता है उसी प्रकार अपने परमार्थ स्वरूप आत्मा को बुद्धि रूपी घट से असंग जानो और सर्वाधिष्ठान मुझ व्यापक बासुदेव से अभिन्न जानो क्योंकि जैसे महाकाश का अन्श घटाकाश महाकाश से भिन्न नहीं हो सकता उसी प्रकार मैं व्यापक परमात्मा अपने अन्श बुद्धि उपहित चेतन आत्मा से भिन्न नहीं हो सकता। जब तुम अपना स्वरूप सर्वाधिष्ठान शुद्ध चेतन जान लोगे तब भोग्य, भोग और भोक्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा भोक्ता की कामनायें सभी का बाध निश्चय हो जायगा जैसे विम्ब के ज्ञान से प्रतिबिम्ब तथा उसके धर्मों का बाध हो जाता है।

अतः ज्ञानाग्नि से काम को भस्म करो तब शिव पद के अधिकारी होगे। जैसे अग्नि का स्वभाव जलाना है उसी प्रकार ज्ञान का स्वभाव अज्ञानजनित पदार्थों को भ्रममात्र अनहुआ बताना और अधिष्ठान को असंग निर्विकार रूप से साक्षात्कार करा देना है।

हे अर्जुन! जैसे रज्जुसर्प को नाश करने के लिये रज्जु का ज्ञान प्रकाश द्वारा करना चाहिये उसी प्रकार स्वरूप अज्ञान जनित काम क्रोध का नाश करने के लिये अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो जाओ और अपनी आत्मा को बुद्धि से उसी प्रकार परे समझो जैसे दर्पण से परे बिम्ब होता है।

अर्जुन का प्रश्न ६ :—जब भगवान कृष्ण ने यह कहा कि जिस ज्ञान का उपदेश हे अर्जुन! मैं तुमको दे रहा हूँ यही ज्ञान सृष्टि के आदि में मैंने सूर्य को दिया था तब अर्जुन ने भगवान से पूछा कि आपका जन्म तो अभी हुआ है और सूर्य का जन्म सृष्टि के आदि में हुआ था। उस समय तो आप थे भी नहीं फिर आप ने यही ज्ञान सूर्य को दिया था, यह बात मैं कैसे मान लूँ।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! जैसे मैं और तुम अनेकों स्वप्न देख चुके हैं उसी प्रकार मैं और तुम अनेकों जन्म देख चुके हैं। परन्तु मुझे सब जन्मों की याद है और तुम भूल गये हो क्योंकि तुम्हारे जन्म अविद्या जनित देहाभिमान पूर्वक शुभाशुभ कर्मों के कारण होते चले आ रहे हैं। मेरे न भूलने का कारण यह है कि मेरे जन्म कर्मों के अधीन नहीं हैं क्योंकि मैं अविद्या से रहित सर्वज्ञ हूँ। जब जब मैं आवश्यकता समझता हूँ तब तब धर्म और साधुओं की रक्षा के लिये और अधर्म तथा दुष्टों के नाश के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिये अपनी माया शक्ति से अर्थात् इच्छा से जैसा स्वरूप बनाना चाहता हूँ प्रकट कर लेता हूँ।

जब योगी मन माने अनेक रूप संकल्प से धारण कर सकता है तब योगियों को शक्ति देने वाला मैं योगेश्वर संकल्प से जब चाहूँ तब मन माना रूप धारण करके प्रकट हो जाऊँ इस में क्या आश्चर्य है। कोई जीव मेरी भाँति स्वतंत्रता पूर्वक जन्म नहीं ले सकता क्योंकि वे अविद्या उपाधि से युक्त हैं जो निज स्वरूप का ज्ञान नहीं होने देती और देहाभिमान उत्पन्न करके शुभाशुभ कर्मों में फंसाये रहती है। जब निद्रा में असम्भव स्वप्न के रचने की सामर्थ है तो मेरी माया में विश्व रचने तथा सगुण रूप रचने की सामर्थ मानने में क्यों आश्चर्य करते हो।

जैसे जीवों में शुद्ध सत्व माया शक्ति का अभाव है उसी प्रकार जीवों की उपाधि मलिन सत्व अविद्या शक्ति से मैं रहित हूँ इस कारण बार २ अवतार लेने पर भी मैं मोहित नहीं होता और मुझे सर्व अवतारों का स्मरण है परन्तु तुम अपने जन्मों को भूल गये हो।

अब यदि यह कहो कि योगियों में अनेक रूप धारण करने की सामर्थ्य कहाँ से आती है जब वे माया शक्ति से रहित हैं तो उसका समाधान यह है कि वे मेरी कृपा से मुझ से ही माया शक्ति का थोड़ा अन्श प्राप्त करके अनेक रूप रचने की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। अतः मैं माया के कारण सर्वज्ञ ईश्वर हूँ इस से मैं समस्त जन्मों को जानता हूँ और तुम अविद्या के कारण अल्पज्ञ जीव हो इस से अपने जन्मों को भूल गये हो। परन्तु जीव ईश्वर में अल्पज्ञता सर्वज्ञता आदि का भेद उपाधिकृत है स्वरूपतः नहीं। हे अर्जुन यह मत समझो कि हम और तुम पहले नहीं थे और शरीरों के अन्त होनेपर नहीं रहेंगे। जीव और मैं ईश्वर दोनों अनादि हैं। अतः सृष्टि के आदिमें मैंने सूर्य को उपदेश किया था इस कथन में क्यों संशय करते हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन का प्रश्न १० :—हे भगवान आप ने जीवों के जन्म का कारण कर्म बतलाया है। अतः कर्म कितने प्रकार के होते हैं यह बतलाने की कृपा कीजिये।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! कर्म, विकर्म तथा अकर्म रूप से कर्म को तीन प्रकार का समझना चाहिये। निज स्वरूप को छिपाने वाली अविद्या पर्यन्त अविद्या जनित देहाभिमान पूर्वक शास्त्र विहित नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा प्रायश्चित रूप शरीर मन वाणी से होने वाले शुभ कर्मों को ही कर्म समझना चाहिये और निषिद्ध पाप कर्मों को विकर्म जानना चाहिये। विकर्म से जीव की अधोगति होती है और सकाम कर्म से स्वर्गादि की प्राप्ति होती है और निष्काम कर्म से अन्तः करण शुद्ध होकर ज्ञान का अधिकारी बन जाता है।

निज स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा के साक्षात्कार के द्वारा अविद्या का नाश होने पर कर्ता भोक्ता पन की भ्रान्ति भी नष्ट हो जाती है। जैसे लाल पुष्प की लालामी से मूर्ख समीप में रखी हुई स्फटिकमणि को भी लाल समझता है उसी प्रकार अविद्या से मोहित जीव अन्तः करणके कर्ता भोक्तापन धर्म निष्क्रिय आत्माके धर्म मानता है। परन्तु जब अविद्या नाश हो जाती है तब वह अपने स्वरूप को अकर्ता असंग निर्विकार जानता है और देह मन इन्द्रियों की किसी भी क्रिया का कर्ता अपनी आत्मा को नहीं मानता जैसे जाग्रत शरीर में अभिमान हो जाने पर स्वप्न शरीर से किये हुये कर्मों का कर्ता जागा हुआ पुरुष अपने को नहीं मानता है। तब उसी आत्मदर्शी के आभास रूप देह मन इन्द्रियों के आभास रूप समस्त कर्म ज्ञानाग्नि से दग्ध हो जाने के कारण अर्थात् बाध हो जाने के कारण जन्म रूप फल देने में असमर्थ हो जाते हैं।

अतः ज्ञानाग्नि से दग्ध जन्म रूप फल देने में असमर्थ अभिमान से रहित आभास रूप शरीर मन इन्द्रियों के कर्मों को अकर्म कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन का प्रश्न ११ :—हे भगवन् ! जिस ज्ञान के प्राप्त होने पर ज्ञानी के समस्त कर्म अकर्म हो जाते हैं उस ज्ञान की प्राप्ति का उपाय क्या है और उस ज्ञान का फल क्या है और उस ज्ञान का अधिकारी कौन है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! जैसे सोये हुए पुरुष को जागा हुआ पुरुष ही जगा सकता है उसी प्रकार अनादि अज्ञाननिद्रा में सोये हुए पुरुषको ब्रह्म दर्शीही जगा सकता है। जैसे सादि निद्रा अपने आप भी नाश हो जाती है उसी प्रकार अनादि अविद्या अपने आप नाश हो जायगी ऐसा कदापि मत समझना। अविद्या का नाश तभी होगा जब श्रोत्रिय ब्रह्म निष्ठ गुरु से ज्ञान का उपदेश मिलेगा। अतः शिष्य भाव से सर्वस्व अर्पण करके गुरु को प्रसन्न करके अविद्या नाश के लिए प्रश्न करे कि हे भवसागर के मल्लाह ! यह संसार क्या है। मैं कौन हूँ अर्थात मैं देह हूँ या देह से प्रथक हूँ, कर्ता भोक्ता हूँ या अकर्ता अभोक्ता हूँ, परिच्छिन्न हूँ या व्यापक हूँ, संसार वन्धन मुझको कैसे हुआ और इस से मुक्त होने का क्या उपाय है। ईश्वर का स्वरूप क्या है। वह विभु है या एक देशी तथा निर्गुण है या सगुण। वह संसार का निमित्त कारण है या उपादान या दोनों। मैं ईश्वर से भिन्न हूँ या अभिन्न। यदि मैं उससे अभिन्न हूँ तो पंच क्लेशों से युक्त परिच्छिन्न क्यों हूँ। इन प्रश्नों का समाधान करके भवसागर में डूबते हुए मुझ दीन का उद्धार कीजिये। इस प्रकार से विनय पूर्वक प्रश्न करने से सद्गुरु के उपदेश करने पर ही ज्ञान होगा दूसरा उपाय नहीं है।

ज्ञान होने का फल यह है कि अविद्या अर्थात् स्वरूप का अज्ञान सदा के लिये नष्ट हो जावेगा और फिर कभी मोह अर्थात् देह दृश्य में अहंता ममता तथा सत बुद्धि और सुख बुद्धि नहीं हो सकती क्योंकि सर्वाधिष्ठान मुझ वासुदेव को ही वह अपनी आत्मा जानने लगता है और समस्त स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच को अपने में रज्जु सर्प वत प्रतीति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्र देखने लगता है। प्रलय को भी अध्यस्त स्वप्न वत भ्रम मात्र जानने से प्रलय के आभास मात्र दुःखों से अपनी कोई हानि नहीं देखता जैसे स्वप्न के प्रलय से जाग्रत में कोई हानि नहीं देखी जाती है। ज्ञान द्वारा अविद्या नाश होने से उसके संचित कर्म भी नाश हो जाते हैं और कर्तापन का अभिमान नाश हो जाने के कारण क्रियमाण कर्म भी नाश हो जाते हैं अर्थात् कर्म फल देने में असमर्थ होने से अकर्म हो जाते हैं। अतः प्रारब्ध समाप्त होनेपर सूक्ष्म शरीर के अभाव में पुनर्जन्म का भी अत्यन्ताभाव हो जाता है। ज्ञान होने पर वह तत्वदर्शी शरीर पर्यन्त शोक मोह से रहित होकर शुद्ध वासुदेव सच्चिदानन्द ब्रह्म में उसी प्रकार अभिमान रखता है जैसे अविवेकी का देह में सहज अभिमान होता है। यही उसकी जीवन्मुक्ति अवस्था है और प्रारब्ध समाप्त होने पर स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच का अत्यन्ताभाव होकर केवल अधिष्ठान ब्रह्म रूप से शेष रहजाना विदेहमुक्ति समझना चाहिये। जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति ही ज्ञान के मुख्य फल हैं। ज्ञान होने पर प्रारब्ध पर्यन्त तत्व दर्शी के शरीर से होने वाले समस्त कर्म अकर्म हैं तथा उसके शरीर से यदि तीनों लोकों की हिंसा भी हो जाये तो भी अहंकृत भाव नष्ट हो जाने के कारण उसका पुनर्जन्म नहीं हो सकता। परन्तु ऐसा ज्ञान अधिकारी को ही होता है जिसने सेवक सेव्यभाव से निष्काम ईश्वरार्थ कर्म करके अपने अन्तः करण को शुद्ध कर लिया है और सर्वत्र ममत्व और आसक्ति से रहित होकर मन इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है तथा जिसको संसार चिन्तवन में दुःख और भगवतचिन्तवन में सुख मिलने लगा है। जैसे समुद्र में डूबा हुआ समुद्र से निकलने की उत्कट कामना करता है उसी प्रकार जिसको संसार समुद्र से पार होने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गई है। जिसको ईश्वरमें उतनीही भक्ति है जितनी मछलीको जल में भक्ति है। वह यह भी जानता है कि गुरु की कृपा के बिना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवसागर से पार होना और सच्चिदानन्द ईश्वर की प्राप्ति होना असम्भ है। अतः ईश्वर के समान ही उसको गुरु के चरणों में भी श्रद्धाभक्ति है। जो देहों को मलमूत्र की जेल समझ कर स्वदेह से भी वैराग्य करने लगा है और उसके मान अपमान से हर्ष शोक नहीं करता तथा दुःख रूप मलिन देह के शत्रु मित्रों से रागद्वेष नहीं करता। स्त्री पुत्रादि सम्बन्धियों में जो सुखबुद्धि पूर्वक स्नेह नहीं करता है और समस्त प्रपंच को दुःख रूप जानकर हृदय से विरक्त रहता है। जैसे चकोर चन्द्र का दर्शन चाहा करती है उसी प्रकार जो सन्तों के दर्शनों के लिये लालायित रहता है और दर्शन मात्र से परम सुख को प्राप्त होता है और उनके वचनामृत का अहर्निश पान करते रहना चाहता है। सत्संग के अभाव में जिसको स्वाध्याय और मनन के अतिरिक्त कुछ नहीं सुहाता तथा स्वप्न में भी जन्ममरण से छूटने तथा परमानन्द को प्राप्ति की उधेड़बुन में लगा रहता है। हे अर्जुन! संक्षेप से कहे हुए इन लक्षणों से सम्पन्न ही ज्ञान का अधिकारी है।

अर्जुन का प्रश्न १२– हे केशव! मैंने आप के उपदेश से जानाकि अन्तःकरण शुद्धि के लिये कर्म योग आवश्यक है और मोक्ष के लिये ज्ञानयोग आवश्यक है। अब कृपा करके यह बतलाइये कि मैं कर्म योग का अधिकारी हूँ या ज्ञानयोग का क्योंकि एक साथ दोनों का अनुष्ठान असम्भव है। भाव यह है कि कर्ता का ही कर्त्तव्य होता है अकर्ता का कोई कर्त्तव्य नहीं, वह तो असंग निर्विकार होता है। ज्ञानयोगी अपनी आत्मा को अकर्ता जानलेता है अतः उसका कोई कर्त्तव्य नहीं। परन्तु कर्मयोगी अपनी आत्मा को अकर्ता नहीं जानता, वह सात्विक कर्ता होता है। इस कारण कर्मयोग और सांख्ययोग में सम समुच्चय नहीं क्रम समुच्चय है। चूँकि आप सर्वज्ञ परमेश्वर हैं अतः मुझे दोनों में से एक का उपदेश करो।

भगवान का उत्तरः—हे अर्जुन उपदेश देशकाल परस्थिति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के अनुसार करना चाहिये। चूंकि तुम दोनो सेनाओं के बीच युद्धस्थल में अन्याय के पक्षपाती युद्ध का इच्छा वाले सजाओं के संन्मुख खड़े हो अतः तुम्हारे लिये प्रत्येक दशामें कर्मयोगका आचरण करना ही आवश्यक है। यदि तुम्हारा अन्तः करण अशुद्ध है तो सुख दुख हारजीत को समान समझकर युद्ध रुप अपना कर्त्तव्य पालन करने से तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होगा। यदि अन्तःकरण शुद्ध होने से मेरे उपदेश द्वारा तुमको ज्ञान हो जाये तो भी लोक संग्रह के लिये युद्ध करना चाहिये क्योंकि जैसा श्रेष्ठ पुरुष आचरण करते हैं उनके पीछे चलनेवाले इतर लोगभी वैसा आचरण करते हैं। यदि तुम अपना क्षत्री धर्म पालन करोगे तो क्षत्रियों की मृत्यु होने पर उनकी स्त्रियाँ भी अपना धर्म पालन करेंगी अर्थात् सती हो जायेंगी फिर उनकी सन्तान वर्ण संकर होंगी ऐसा सन्देह करके शोक क्यों कर रहे हो। यदि तुम युद्ध रूप क्षत्री धर्म का त्याग कर दोगे तो इतर लोग भी धर्म का त्याग कर देंगे। अतः तुमको निष्कर्त्तव्य होने पर भी कर्मयोग का त्याग नहीं करना चाहिये अतः इस समय क्षत्री धर्म का पालन करना तुम्हारे लिये हर पहलू से श्रेष्ठ है।

अर्जुन का प्रश्न १३:—ज्ञानयोगी और कर्मयोगी की क्या मान्यता होनी चाहिये।

भगवान का उत्तर:—जैसे ठूँठ की छाया घटने बढ़ने से ठूँठ नहीं घटता बढ़ता एकरस अचल रहता है उसी प्रकार शरीर मन इन्द्रियों की समस्त क्रियायें होते रहने पर भी आत्मा ठूँठ वत निष्क्रिय अचल निर्विकार रहती हैं। मेरे परमार्थ रूप शुद्ध सच्चिदानन्द घन आत्मा में कभी कोई क्रिया नहीं हुई न हो रही है और न होगी, भ्रममात्र स्वप्नवत अविद्या जनित इन्द्रियाँ स्वप्न वत विषयों में वर्त रही हैं। ऐसी ज्ञानी की मान्यता होनी चाहिये। गीता अ०५–श्लो. ८,९

जैसे मुनीम, मैनेजर, माली तथा उत्तम पतिव्रता स्त्री अपने मालिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की आज्ञा से मालिक का काम मालिक के लिये किया करते हैं उसी प्रकार परमात्मा का सेवक बनकर ईश्वरार्थ निष्काम भाव से फलाकाङ्क्षा रहित होकर कर्मयोगी को धैर्य और उत्साहपूर्वक सिद्धि असिद्धि में हर्षशोक से रहित होकर कर्त्तव्य का पालन करते रहना चाहिये, फल की किञ्चित मात्र चिन्ता नहीं करना चाहिये क्योंकि फल देना भगवान के अधिकार में है तथा जो भी भगवान फल देते हैं वह हमारे कल्याण के लिये ही देते हैं। ऐसी मान्यता कर्मयोगी की होनी चाहिये।

अर्जुन का प्रश्न १४:— हे गोविन्द! जब ज्ञान योगी आत्मा को निष्क्रिय जानता है तो ईश्वर फलदाता कैसे हो सकता है।

भगवान का उत्तर— जैसे स्वप्न की प्रजा अपने को कर्ता मानती है और स्वप्न के राजा को फलदाता मानती है परन्तु वह सब निद्रा का खेल है स्वप्न का अधिष्ठान साक्षी न कर्म फल दाता है न कर्मों को करता कराता है, केवल निर्विकार निर्विकल्प निष्क्रिय रूप से सदा एकरस रहता है उसी प्रकार हे अर्जुन! ईश्वर का लक्ष्यार्थ मैं सच्चिदानन्द व्यापक वासुदेव कुछ भी करता कराता नहीं।

जैसे मेघाकाश का लक्ष्यार्थ महाकाश असंग व्यापक है और वृष्टि करना आदि क्रियाओं का कर्ता नहीं उसी प्रकार ईश्वर का लक्ष्यार्थ मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ जिसमें सर्व क्रियाओं का अत्यन्ता भाव है। जैसे वृष्टि का कारण मेघ और स्वप्न का कारण निन्द्रा है उसी प्रकार कर्म करना, कर्म कराना तथा कर्म फल देना आदि प्रपंच का कारण माया है। सर्वात्मा मुझ वासुदेव में जल में मक्खन की भाँति समस्त क्रियाओं का अत्यन्ताभाव है। अतः सारा खेल मेरी माया का समझो और अपनी आत्मा से अभिन्न मुझ वासुदेव को निष्क्रिय असंग व्यापक जानों। गीता अ० ५ श्लोक १४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन का प्रश्न १५ :— समस्त विश्व को जीतने का उपाय क्या है ?

भगवान का उत्तर— जैसे समस्त स्वप्न को जाग्रत में स्थित होकर तथा रज्जु सर्प को रज्जु में स्थिति होकर और ठूंठ पुरुष को ठूंठ में स्थित होकर जीता जा सकता है उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान सर्व व्यापक सर्वातीत सर्वात्मा मुझ वासुदेव में स्थित होकर ही यह स्वप्न व रज्जुसर्प तथा ठूँठ पुरुष वत विश्व जीता जा सकता है। गीता अ. ५ श्लोक १६। कारण यह है कि अधिष्ठान की शरण लिए विना अध्यस्त का वाध नहीं हो सकता अर्थात मिथ्या निश्चय नहीं हो सकता। जैसे रज्जुसर्प का रज्जु ज्ञान से वाध हो सकता है उसको मारा काटा नहीं जा सकता उसी प्रकार रज्जु सर्पवत संसार का वाध ही हो सकता है अन्य किसी पुरुषार्थ से नाश नहीं हो सकता। मुझ सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द वासुदेव के साक्षात्कार द्वारा अध्यस्त संसार का वाध करना ही उसको जीतना है। अतः जो मुमुक्षु मुझ सर्वाधार व्यापक वासुदेव की शरण लेता है वही रज्जुसर्पवत मायामात्र स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच से छुटकारा पा सकता है और जो मेरे परमार्थ स्वरूप ब्रह्म को आत्मस्वरूप से अपरोक्ष नहीं करता वह स्वप्नवत संसार में वरावर भटकता रहेगा और मेरी शरण में आये विना संसार से कदापि पार नहीं हो सकता। गीता अ० ७ श्लोक १४।

जैसे अज्ञान दृष्टि से रज्जु में सर्प प्रतीति होते हुये ज्ञान दृष्टि से रज्जु में सर्प नहीं है उसी प्रकार मुझ सच्चिदानन्द घन व्यापक वासुदेव में मेरी माया से प्रतीत होनेवाला संसार वास्तव में मुझ में नहीं है।

गीता अ० ९ श्लोक ५।

शास्त्रज्ञ संसार को असत भी नहीं कहते क्योंकि असत उसको कहते हैं जिसका सदा अभाव हो और सत भी नहीं कहते क्योंकि सत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसको कहते हैं जिसका सदा भाव हो। परन्तु संसार का सदा अभाव नहीं है अज्ञान पर्यन्त भाव रूप है और ब्रह्म साक्षात्कार होने के पश्चात प्रारब्ध समाप्त होने पर इसका अभाव होता है। अतः संसार सत और असत से विलक्षण अनिर्वचनीय मुझ सर्वाधिष्ठान वासुदेव का मायामात्र विवर्त स्वरूप है। अतः मेरी शरण लेने पर ही संसार पर विजय प्राप्त हो सकती है।

अर्जुन का प्रश्न १६:—हे माधव! मनवायु के समान चंचल है इस कारण ज्ञान योग में स्थित होना महान कठिन है। अतः मन को वश करने का उपाय बतालाने की कृपा कीजिये।

भगवान का उत्तर:—हे अर्जुन संसार को मृगजलवत जानकर सुख बुद्धि और सत बुद्धि को नष्ट करो। जैसे मृगजल जल शून्य है उसी प्रकार संसार सत्ता और सुख से रहित है। सूर्य की किरणों के ज्ञान के कारण मृगजल की नदी सत्त्य और जलपूर्ण भासती है उसी प्रकार जीव रूपी मृग को सूर्य किरणवत मुझ सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान वासुदेव का अज्ञान है जिस कारण से संसार को सत्त्य और सुख रूप भ्रम से निश्चय करता है। अतः मेरे बचनों पर श्रद्धा करो और संसार को स्वप्न और मृगजलवत मानकर संसार में सुखबुद्धि का त्याग करो। संसार को सत्त्य सुख रूप मानकर संसारसे सुख की अभिलाषा रखना ही राग है। संसार को सुखहीन तथा असत जड़दुःख रूप जानकर संसारसे सुख की अभिलाषा उसी प्रकार न रखना चाहिये जैसे मृगजल से मक्खन निकालने की कोई अभिलाषा नहीं कर सकता, इसी को वैराग्य कहते हैं। यही वैराग मन को वशकरने के लिये जंजीर है। निद्रा आने पर स्वप्न का देह बन जाता है और जीव उस भ्रममात्रदेह में अपने को कैद समझने लगता है। निद्रा आने पर प्रतीत होता है स्वप्न देह आत्मा में और भ्रम से यह निश्चय होता है कि मेरा आधार स्वप्न देह है। इस देहके दुखसे मैं दुखी होताहूँ और इसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोगी होने और मरने से मैं रोगी होकर मर जाऊँगा और पाप पुण्य करनेसे मैं पापी धर्मात्मा कर्ताभोक्ता बन जाता हूँ, ऐसा निद्रा के कारण स्वप्न में विपरीत निश्चय होता है। इसी प्रकार मुझ वासुदेव विश्वाधार सर्वात्मा ब्रह्म के अज्ञान से जीव को जाग्रत तथा जाग्रत देह भ्रममात्र प्रतीत होता है और अज्ञान के कारण जैसे स्वप्न देह में अभिमान कर लिया था उसी प्रकार जाग्रत देह में भी अभिमान करके कैद हो जाता है और स्वप्न तथा जाग्रत की दोनों देहों का आधार होते हुए भी अज्ञान वश उनको अपना आधार मानता है और उन देहों के कल्पित धर्मों को अपने धर्म मानता है। जैसे स्वप्न से जाग्रत में आने पर जाग्रत देह में अभिमान कर लेता है और स्वप्न देह का अभिमान छोड़ देता है और स्वप्न देह के गुणधर्म विकार तथा क्रियाओं से अपने को असंग निर्लेप जानने लगता है उसी प्रकार जो जीवात्मा महाजाग्रत स्वरूप मुझ सच्चिदानन्द ब्रह्म में जाग कर अभिमान कर लेता है और स्वप्नवत जाग्रत देह का अभिमान छोड़ देता है और जाग्रत देह मन इन्द्रियों के गुण, धर्म, विकारों तथा क्रियाओं से अपने को प्रथक असंग निर्विकार जान लेता है उसका मन प्रारब्ध पर्यन्त बराबर शान्त स्थिर रहता है कभी चंचल नहीं होता। अतः हे अर्जुन ! तुम मन वश करने के लिये वैराग्य के साथ साथ मुझ सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द वासुदेव में आत्मभाव करने का सदा अभ्यास करो अर्थात् देह मन इन्द्रियों को तथा इनके गुण धर्म विकारों तथा क्रियाओं को स्वप्नवत भ्रममात्र विचार करते रहो और अपने को इन सबसे रहित निर्गुण, निर्धर्मक, निर्विकार तथा निष्क्रिय जानकर असंग निर्लेप निश्चय करते रहो। जैसे बादल के चलने से चन्द्र नहीं चलता केवल चलता हुआ भासता ही है उसी प्रकार बादलवत देहमन इन्द्रियों की क्रियाओं से आत्मा कर्ता नहीं हो जाता केवल प्रतीत होता है। जैसे घटमें घटाकाश असंग है उसी प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देह रूपी घट से मैं असंग हूँ। जैसे घटाकाश महाकाश से अभिन्न है उसी प्रकार मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म से अभिन्न हूँ, ऐसा निश्चय करो। जैसे स्वप्न संसार और स्वप्न देह भ्रम मात्र हैं उसी प्रकार जाग्रत तथा जाग्रत देह अज्ञान जनित होने से भ्रम मात्र हैं। इस प्रकार हे अर्जुन तुम सदा अनात्म भावनाओं का तिरस्कार करो और ब्रह्मात्मैक्य भावनाओं का प्रवाह अहर्निश जारी रक्खो इसी को अभ्यास भी कहते हैं। यह ब्रह्म अभ्यास मन रूपी हाथी के लिये अंकुशवत है। जैसे अंकुश और जंजीर से हाथी वश में हो जाता है उसी प्रकार वैराग्य और अभ्यास से मन वश में हो जाता है अर्थात देह दृश्य में मन अहंता और ममता तथा सत बुद्धि और सुख बुद्धि छोड़ देता है। जब तक देह में अहंता ममता मौजूद है तब तक मन को वश में नहीं समझना चाहिये।

अर्जुन का प्रश्न १७ :—हे अरिसूदन! वैराग्य अभ्यास में लगा हुआ साधक मन वश करने के पूर्व ही मर गया तो उसकी क्या गति होगी।

भगवान का उत्तर—हे अर्जुन जीवात्मा शरीर के नाश होने पर मरता नहीं। जैसे यात्री एक रेलगाड़ी को छोड़कर दूसरी रेलगाड़ी पर सवार हो जाता है अथवा एक धर्मशाला को छोड़कर दूसरे धर्मशाला में चला जाता है उसी प्रकार जीवात्मा यात्री की भांति शरीर रूपी रेलगाड़ी अथवा धर्मशाला को बदल देता है मरता नहीं। जैसे यात्री एक रेल को छोड़कर दूसरी रेलों पर बैठता हुआ आगे बढ़ता जाता है और अपने अभीष्ट स्थान को पहुँच जाता है उसी प्रकार वैराग्य अभ्यास में लगा हुआ साधक एक शरीर को छोड़ कर उसी शरीर के समान अथवा उस से उत्तम दूसरे शरीरों को पाता जाता है और पूर्व पूर्व संसकारों से बराबर वैराग्य अभ्यास को बढ़ाता जाता है और अन्त के शरीर में मेरे परम धाम को अर्थात सच्चिदा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्दस्वरूप को प्राप्त होकर संसार के आवागमन के चक्र से सदा के लिये मुक्त हो जाता है । जैसे विद्यार्थी एक पाठशाला को छोड़कर दूसरे पाठशाला में भर्ती हो जाता है उसी प्रकार साधक एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर पाकर वैराग्य अभ्यास में लग जाता है। जैसे दूसरे पाठ शाला में जाने पर पूर्व का पढ़ा हुआ व्यर्थ नहीं हो जाता तथा एक रेल से दूसरी रेल पर बैठने से पूर्व की की हुई यात्रा व्यर्थ नहीं हो जाती बल्कि पहले स्थान से आगे ही बढ़ता जाता है उसी प्रकार साधक शरीर बदलते हुए वैराग्य अभ्यास को बराबर बढ़ाता जाता है और मेरे परम पद को प्राप्त हो जाता है अर्थात अपने निज स्वरूप में स्थित हो जाता है। अतः वैराग्य अभ्यास में लगे हुए साधक की कभी दुर्गति नहीं होती । वह उत्तम लोकों को व उत्तम कुलों व सात्विक मनुष्य देहों को तथा तत्वदर्शियों के संग को अनायास प्राप्त होते हुये अपने परमार्थ स्वरूप सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द मुझ वासुदेव को प्राप्त कर लेता है।

अर्जुन का प्रश्न १८ :—हे परमेश्वर ! जिस संसार से वैराग्य अभ्यास द्वारा मुक्ति प्राप्त की जाती है उस संसार का कारण कौन है और उस जगत के कारण से आप का क्या सम्बन्ध है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! मेरी दो प्रकृतियाँ हैं, एक अपरा प्रकृति और दूसरी पराप्रकृति। भूमि, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, यह आठ प्रकार की मेरी अपरा प्रकृति है। यह अपरा प्रकृति जड़ है। जैसे जल में आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी प्रकार बुद्धि में मुझ व्यापक चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है वही जीव भूता परा प्रकृति है। यही दोनों प्रकृतियाँ संसार की कारण हैं और मैं उनका अधिष्ठान हूँ जैसे नीलमा का अधिष्ठान आकाश है। जैसे सर्व तरंगों में जल गुथा है अथवा सूत्र की मणियों में सूत्र गुथा है उसी प्रकार मैं कार्य और कारणमें गुथा हूँ। अतः मैं ही सर्वत्र,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्व तथा सर्वातीत हूँ। मुझसे अतिरिक्त किञ्चित मात्र भी कोई अन्य पदार्थ का अस्तित्व नहीं है क्योंकि मैं सर्व का अधिष्ठान हूँ। अतः दोनों प्रकृतियों से मेरा कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है। हे अर्जुन! यह परम गूढ़ रहस्य है, इसको जानकर फिर कुछ जानना शेष नहीं रहता। परन्तु इस रहस्य को केवल मेरे ज्ञानी भक्त ही जानते हैं।

अर्जुन का प्रश्न १९ :—हे भक्त वत्सल! कृपा करके यह बतलाइये कि भक्त कितने प्रकार के होते हैं।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! मेरे भक्त चार प्रकार के होते हैं। पहला दर्जा आर्त भक्तों का है जो केवल मेरे ही भरोसे उसी प्रकार रहते हैं जैसे नन्हाँ बालक अपनी माता के भरोसे रहता है। जैसे कोई दुख आनेपर नन्हाँ बालक रोकर माता को पुकारता है उसी प्रकार आर्त भक्त अपने दुःखों की निवृत्ति के लिये व्याकुल होकर गज और द्रोपदी की भाँति मुझको ही पुकारता है अन्य को नहीं। जैसे नन्हें बालक की दुःख भरी पुकार सुनकर माता अधीर होकर सब काम छोड़ कर तुरन्त उस बालक को गोद में ले लेती है उसी प्रकार मैं भी आर्त भक्त की पुकार सुनकर अधीर हो जाता हूँ और तुरन्त उसका कष्ट निवारण करता हूँ। परन्तु जैसे बालक के रोने पर भी माता उसके मागने पर अग्नि और छुरी उसके हाथ में नहीं देती, बहकाती रहती है उसी प्रकार आर्तव अर्थार्थी भक्त के दुखी होने पर भी मैं उसकी उन्हीं माँगों को पूरा करता हूँ जिनके पूरा करने में उसका हित हो। जैसे काम से व्याकुल होने पर आर्त होकर नारद ने विष्णु रूप धारी मुझ वासुदेव से मेरे जैसा सुन्दर स्वरूप राजाशीलनिधि की कन्यां से विवाह करने के लिये मांगा परन्तु मैंने उनको अपना स्वरूप न देकर बन्दर का स्वरूप देदिया क्योंकि अपना स्वरूप दे देने से उनका पतन हो जाता। अतः जिस संकट को दूर करना मैं उचित समझता हूँ उसको दूर कर देता हूँ और जिस दुख के भोगने से आर्त भक्त का कल्याण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समझता हूँ उस दुख को दूर नहीं करता। आर्त भक्त भी उस दुःख को कड़ुई औषधि समझ कर अपना कल्याण समझते हुए धैर्य पूर्वक भोग लेता है। दूसरा दर्जा अर्थार्थी भक्तों का है। अर्थार्थी भक्त भी ध्रुव की भाँति अपना इच्छित पदार्थ मुझसे ही मागता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति से ही वस्त्रभूषण आदि माँगती है अन्य से नहीं उसी प्रकार अर्थार्थी भक्त भी केवल मेरा ही भरोसा रखता है। आर्त और अर्थार्थी में केवल इतना ही भेद है कि आर्त सांसारिक संकटों को दूर करने के लिये भगवान की भक्ति करता है और अर्थार्थी सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए भगवान की भक्ति करता है। ये दोनों सकामी भक्त हैं। तीसरा दर्जा जिज्ञासु भक्तों का है जो प्रह्लाद की भांति मेरे अनुरोध करने पर भी मुझसे कुछ नहीं माँगते। वे केवल मेरे परमानन्द निरूपाधिक सच्चिदानन्द स्वरूप का साक्षात्कार और अज्ञान तथा अज्ञान जनित संसार की अत्यन्त निवृत्ति चाहते हैं। यह जिज्ञासु भक्त उस सती स्त्री की भाँति है जो चिता पर अपने मृतक पति के साथ भस्म होने जा रही है। जैसे उस सती को अपने पति के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये, वह केवल पति की ही प्राप्ति चाहती है उसी प्रकार जिज्ञासु भक्त केवल परमानन्द स्वरूप मुझ वासुदेव को ही प्राप्त करना चाहता है जिसका अज्ञान से वियोग सा हो गया है। जैसे निन्द्रा से जाग्रत का वियोग और स्वप्न का योग हो जाता है उसी प्रकार अज्ञान से सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान परमानन्द घन मुझ वासुदेव का वियोग और संसार का योग जीवों को हो जाता है। अतः जिज्ञासु भक्त वही है जो स्वप्नवत मिथ्या संसार की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्दरूप सर्वात्मा मुझ वासुदेव की प्राप्ति चाहता है।

चौथा दर्जा ज्ञानी भक्तों का है जो मेरे स्वरूप ही हैं क्योंकि माया अविद्या से रहित मेरे निरुपाधिक स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म को ही मेरी भाँति वे भी अपना परमार्थ स्वरूप जानते हैं और दृश्य व देह मन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियों को स्वप्न वत अविद्या का परिणाम और चेतन का विवर्त समझते हैं। ये ज्ञानी भक्त जनककी भाँति प्रारब्ध पर्यन्त शोकमोहसे रहित होकर संसार को स्वप्न वत जानकर सुख दुख में समान रहते हैं और प्रारब्ध समाप्त होने पर निज परमार्थ ब्रह्म स्वरूप से शेष रहते हैं जो मन बुद्धि, से परे, प्रपंच से शून्य सच्चिदानन्द घन स्वयं प्रकाश सर्व का आत्मा है। ऐसे अन्तिम शरीर धारी ज्ञानी सन्त अत्यन्त दुर्लभ हैं। वे स्वयं भवसागर से पार हो चुके हैं और उनकी शरण में जो पहुँच जाता है वह भी अनायास भवसागर से पार हो जाता है। हे अर्जुन ब्रह्मनिष्ठ सन्त को ब्रह्म रूप ही समझना चाहिये जीव नहीं समझना चाहिये क्योंकि उसका जीव भाव ज्ञानाग्नि से भस्म हो चुका है। उसकी प्रारब्ध पर्यन्त जीव भाव का ज्ञान से बाध होता है और प्रारब्ध क्षय होने पर जीव भाव का अत्यन्ताभाव हो जाता है और ज्ञानाग्नि भी उसी प्रकार शुभ्र अधिष्ठान वासुदेव में विलीन हो जाती है जैसे वांस में प्रकट हुई अग्नि वांस को जलाकर स्वयं भी सामान्य अग्नि में विलीन हो जाती है। हे अर्जुन जैसे सामान्य अग्नि अन्धकार की विरोधी नहीं है उसी प्रकार मैं वासुदेव सामान्य चेतन रूप से अज्ञान और अज्ञान के कार्य का विरोधी नहीं हूँ। जैसे गीली लकड़ी में प्रकट हुई बिना लपट की विशेष अग्नि भी अन्धकार की नाशक नहीं उसी प्रकार मल विक्षेप आवरण युक्त अन्तःकरण में प्रकट हुआ ब्रह्मज्ञान से रहित कर्ता भोक्ता रूप से विशेष चेतन भी अज्ञानान्धकार का नाशक नहीं है। जैसे दीपक में तेल से डूबी हुई वत्ती में प्रकट हुई अग्नि की ज्योति अन्धकार को नाश कर देती है उसी प्रकार मल विक्षेप आवरण से रहित अन्तःकरण में अहंब्रह्मास्मि रूप दृढ़ अपरोक्षज्ञान ज्योति प्रकट होकर अज्ञान और आज्ञान के कार्य प्रपंच का बाध और नाश करती है। तत्पश्चात स्वयं भी उसी प्रकार गायब हो जाती है जैसे निर्मली बूटी जल को शुद्ध करके स्वयं भी गायब हो जाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतः हे अर्जुन ! जिनके मल विक्षेप आवरण रहित अन्तः करण में ज्ञान ज्योति एकरस जगमगाने लगी है वे ही चतुर्थ ज्ञानी भक्त हैं।

अर्जुन का प्रश्न २० :—हे कमल नयन ! ज्ञान की दृढ़ता के लिये यह बतलाइये कि ब्रह्म क्या है और अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव तथा अधियज्ञ किसे कहते हैं। कृपा करके यह भी बतलाइये कि कर्म क्या है और अन्तकाल में आपका ज्ञान किस उपाय से ज्यों का त्यों एकरस स्थिर रक्खा जा सकता है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! व्यावहारिक सत्ता जाग्रत और उसके अज्ञान से अनिर्वचनीय उत्पन्न होने वाला प्रातिभासिक सत्ता स्वप्न दोनों तुमको भली प्रकार ज्ञात हैं। तीसरी परमार्थ सत्ता होती है जिसको ब्रह्म कहते हैं जो सदा भाव रूप और अनन्त है अर्थात देश काल वस्तु के अन्त से रहित है क्योंकि वह सर्वदेशी, अविनाशी और विवर्त रूप से सर्व रूप है। जैसे व्यावहारिक सत्ता के अज्ञान से प्रातिभासिक सत्ता की प्रतीति होती है उसी प्रकार परमार्थ सत्ता रूप ब्रह्म के अज्ञान से व्यावहारिक सत्ता रूप जाग्रत जगत की प्रतीति होती है। जैसे व्यावहारिक सत्ता के ज्ञान से प्रातिभासिक स्वप्न भ्रम की निवृत्ति हो जाती है उसी प्रकार परमार्थ सत्ता रूप ब्रह्म का दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान होने पर व्यावहारिक सत्ता रूप जाग्रत भ्रम भी निवृत्त हो जाता है। अतः हे अर्जुन ! जिसके अज्ञानसे व्यावहारिक सत्तावाले जाग्रत जगत की प्रतीति हो रही है वही त्रिकालाबाध्य व्यापक निर्द्वैत सच्चिदानन्द तत्व परमार्थ रूप ब्रह्म है जो व्यावहारिक व प्रातिभासिक प्रपंच की प्रतीति के पूर्व भी था और प्रतीति काल में भी है और प्रपंच की प्रतीति के अभाव होने पर भी सर्वात्मा रूप से शेष रहता है। हे अर्जुन ! आकाश में नीलमावत प्रतीत होनेवाली माया आवरण और विक्षेप शक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाली है जो मेरे ही आश्रित प्रतीत होने पर भी मेरा ही ज्ञान नहीं होने देती। यह माया अनादि है और इसके सहयोग से ही मैं स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच को तथा जीव ईश्वर रूप से अपने को आभास रूप से प्रकट करता हूँ। मैं आभास रूप से आवरण शक्ति को ग्रहण करके अल्पज्ञ जीव और माया की विक्षेप शक्ति का आभास रूप से ग्रहण करके सर्वज्ञ ईश्वर होता हूँ। इस जीव भाव को ही अध्यात्म समझना चाहिये और ईश्वर भाव को अधियज्ञ समझना चाहिये। सूक्ष्म पंच भूत तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले सत्तरह तत्वों से युक्त समष्टि सूक्ष्म शरीरों को अधिदैव समझना चाहिये तथा समष्टि स्थूल शरीरों को अधिभूत समझना चाहिए। श्रौत स्मार्त यज्ञादि को ही कर्म समझना चाहिये जो स्थावर जङ्गम भूत प्राणियों के जन्म के कारण हैं। हे अर्जुन! अन्तकाल में भी ऐसा ही दृढ़ निश्चय रहे कि सर्व ब्रह्म है। यह तभी सम्भव है जब निरन्तर तत्परता से प्रीतिपूर्वक श्रवणमनन निदिध्यासन करते हुए मुझ निर्गुण परम अक्षर सर्वात्मा ब्रह्म का साक्षात्कार कर ले। जैसे लोभी धन का और कामी स्त्री का चिन्तवन स्वभाव से ही किया करता है उसी प्रकार निज स्वरूप मुझ सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म का चिन्तवन जब स्वाभाविक होने लगेगा तब अन्त काल में भी ज्ञान स्थिर रह सकता है। जैसे जो विद्यार्थी निरन्तर अपना पाठ याद किया करता है उसका परीक्षा के समय भी अपना याद किया हुआ पाठ याद रहता है उसी प्रकार जो निरन्तर मुझ वासुदेव के चिन्तवन में रहता है उसको अन्तकाल में भी मेरे स्वरूप के अतिरिक्त अन्य की भावना नहीं होती। परन्तु जैसी निष्ठा अज्ञानी की स्वदेह में होती है अथवा निद्रा भंग हो जाने पर जाग्रत शरीर में निष्ठा हो जाती है और स्वप्न शरीर को भ्रममात्र जान लिया जाता है उसी प्रकार जिसने नाम रूप को स्वप्न वत भ्रममात्र जान लिया है और परमार्थ रूप सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्म में दृढ़ निष्ठा प्राप्त कर ली है उसी की दृष्टि में मुझ वासुदेव से अतिरिक्त अन्य की भावना का अत्यन्ताभाव हो सकता है।

हे अर्जुन ! जैसे सोते हुए पुरुष को जाग कर स्वप्न देह का बाध करके जाग्रत शरीर में अभिमान करना चाहिये उसी प्रकार तुम भी हमारे उपदेश से जागो और सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच को स्वप्नवत जानकर मिथ्या निश्चय करो तथा मेरे परमार्थ स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म में आत्म भावना करो क्योंकि घटाकाशवत आत्मा का महाकाशवत मुझ वासुदेव में ही अभिमान करना चाहिये घट रूपी तीनों देहों और पंचकोशों में अभिमान करना महान मूर्खता है। जब घटाकाश को महाकाश रूप जान लिया गया तो घटाकाश का रक्षा के लिये घट की रक्षा करना व्यर्थ है। घट चाहे रहे या नष्ट हो जाये आकाश सदा एकरस निर्विकार रहता है उसी प्रकार निजानन्द मुझ बासुदेव को आत्मा जान लेने पर देह प्रतीत हो या नष्ट हो जाये ज्ञानी अपने परमार्थ स्वरूप मुझ ब्रह्म को सदा असंग निर्विकार एक रस जानता है। अतः हे अर्जुन ! मेरे उपदेश को जिज्ञासु बनकर श्रवण मनन निदिध्यासन करो और जब अभ्यास करते करते ज्ञान-निष्ठा प्राप्त हो जायेगी फिर अन्तकाल में भी भ्रान्ति उसी प्रकार नहीं होगी जैसे ब्राह्मण जाति के अभिमानी को अन्तकाल में भी यही निष्ठा रहती है कि मैं ब्राह्मण हूँ। मैं शूद्र हूँ ऐसी उस ब्राह्मण को अन्तकाल में भी भ्रान्ति नहीं हो सकती क्योंकि उसने आजन्म अपने को ब्राह्मण ही निश्चय किया है और शूद्र स्वप्न में भी नहीं माना है उसी प्रकार जब तुम को ब्राह्मण की भाँति ब्रह्म में सहज अभिमान हो जायगा और स्वप्न में भी देह मन इन्द्रियों को अपना स्वरूप नहीं मानोंगे तब शरीर के अन्त के समय भी ज्ञान में बाधा नहीं पड़ेगी क्योंकि विपरीत भावना का अत्यन्ताभाव हो चुका है। अतः युद्ध के समय भी विजातीय वृत्तियों का तिरस्कार करते रहो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि मरना मारना, कटना काटना सर्व धर्म देहों के हैं तथा सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह जारी रक्खो कि मैं असंग अखंड अकर्ता अभोक्ता शुद्ध बुद्ध मुक्त परमानन्द घन व्यापक सच्चिदानन्द तत्व हूँ जो मन बुद्धि से परे प्रपंच शून्य है।

अर्जुन का प्रश्न २१ :—हे सर्वज्ञ प्रभो! शरीर छोड़ने पर जीव कौन कौन मार्गोंसे जाता है और वे मार्ग उसको कहाँ पहुँचाते हैं।

भगवान का उत्तर : - हे अर्जुन! जो शास्त्र के अनुसार कर्म नहीं करते क्योंकि उनको परलोक पुनर्जन्म तथा मुझ ईश्वर पर विश्वास नहीं है वे पापाचारी सन्मुखी पामर स्वर्गादि उत्तम लोकों को पहुँचाने वाले मार्गों पर नहीं चल सकते। वे उसी प्रकार परवश हुए पाप योनियों में पुनः पुनः जन्ममरण को प्राप्त होते रहते हैं जैसे तरंगों में पड़े हुए कीट एक तरंग से दूसरी तरंग में तथा दूसरी से तीसरी तरंग में इसी प्रकार लगातार तरंगों के जाल में फंसे रहते हैं।

इस प्रकार के जन्ममरण को जायस्वम्रियस्व मार्ग कहते हैं। जायस्व म्रियस्व मार्ग वाले पामर प्राणी अण्डज, पिण्डज, उद्भिज तथा स्वेदज चार खानों रूपी हवालात में वन्द रहकर चौरासी लाख योनियां रूपी जेलों में पुनः पुनः प्राप्त होते रहते हैं।

हे अर्जुन शास्त्र विहित कर्म करने वालों के लिये दो प्रसिद्ध मार्ग हैं जिनमें एक शुक्ल मार्ग है जिसको देवयान और अर्चिमार्ग भी कहते हैं, दूसरा कृष्ण मार्ग है जिसको पितृयान तथा धूममार्ग भी कहते हैं। निज स्वरूप मुझ निर्गुण निराकार सर्व व्यापक वासुदेव का साक्षात्कार होने के पूर्व निष्कामी कर्मयोगी क्रमशः अग्नि के, ज्योति के, दिन के, शुक्ल पक्ष के तथा उत्तरायण के षट मास के देवताओं द्वारा सूर्य मंडल भेद कर ब्रह्म लोक जाता है तथा सकामी कर्मयोगी धूम के, रात्रि के, कृष्णपक्ष के, तथा दक्षिणायनके षट मास के देवताओं द्वारा चन्द्र लोक को प्राप्त होकर पुण्य क्षीण होने पर फिर मृत्यु लोक को प्राप्त करता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे अर्जुन ! ज्ञान मार्ग का जिसने दृढ़ता पूर्वक अवलम्बन कर लिया है उसको प्रारब्ध क्षय होने पर जाना आना नहीं पड़ता । प्रारब्ध क्षय होते ही वह ब्रह्म रूप से उसी प्रकार स्थित हो जाता है जैसे घटाकाश महाकाश रूप से तथा वायु नाश होनेपर तरंग जलरूप से और दर्पण नाश होनेपर प्रतिबिम्ब बिम्ब रूपसे स्थित हो जाता है। जैसे आकाश सर्वत्र है और घटाकाश से अभिन्न है उसी प्रकार मुझ वासुदेव का परमार्थ स्वरूप ब्रह्म व्यापक है और जीव के शुद्ध स्वरूप आत्मा से अभिन्न है। इस कारण निजस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति के लिये आने जाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे निद्रा द्वारा स्वप्न का भ्रम हो जाता है और जाग्रत जगत का ज्ञान नहीं रहता उसी प्रकार निज स्वरूप के अज्ञान पर्यन्त लोकपरलोकका स्वप्नवत भ्रम होता है और निज स्वरूप ब्रह्म का ज्ञान नहीं रहता। परन्तु जैसे जाग्रत का ज्ञान होते ही नित्य प्राप्त जाग्रत अवस्था की प्राप्ति हो जाती है उसी प्रकार अविद्या के नाश होते ही नित्य प्राप्त ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। अतः हे अर्जुन ! तुम ज्ञानयोगी बनो क्योंकि ज्ञानयोगी का पुनर्जन्म नहीं होता। गीता अ० ८ श्लोक १६ व अ० १३ श्लोक २३ व अ० १४ श्लोक २।

अर्जुन का प्रश्न २२ :—हे भगवान ! ज्ञान को सर्व श्रेष्ठ क्यों कहा गया है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! जैसे लोक में राजा सारी प्रजा से श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार सर्व प्रकार की अपराविद्याओं से पराविद्यारूपज्ञान श्रेष्ठ है क्योंकि अपराविद्या से स्वप्नवत भ्रममात्र दृश्य का ज्ञान होता है तथा पराविद्या से द्रष्टा को अपने वास्तविक शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान होता है। सर्व प्रकार की अपराविद्याओं में मिलकर भी अविद्यानाश करने की सामर्थ्य नहीं है जैसे सर्व तारागण तथा चन्द्रदेव आदि मिलकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी सूर्य के बिना रात्रि नाश नहीं कर सकते। परन्तु जैसे सूर्य बिना श्रम के ही रात्रि का नाश करने में समर्थ है उसी प्रकार पराविद्या रूप ज्ञान का शुद्ध अन्तःकरण में प्रादुर्भाव होते ही अविद्या का अत्यन्ता भाव हो जाता है अर्थात् यह निश्चय हो जाता है कि अविद्या न किसी काल में थी न अब है और न आगे होगी। इसी कारण ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यह ज्ञान इतना दुर्लभ है कि पामर विषयी लोगों का कहना ही क्या सन्त महात्माओं में भी कोई विरले ही सन्त ज्ञान को प्राप्त कर पाते हैं। इसलिये भी ज्ञान को सर्व श्रेष्ठ कहा गया है। ज्ञान इतना पवित्र है कि द्रष्टा इस परम पवित्र ज्ञान का स्पर्श करतेही महामलिन देह दृश्य रूपी मलसे उसी प्रकार शून्य हो जाता है जैसे सूर्य निकलते ही आकाश रात्रिसे शून्य हो जाता है अथवा प्रकाश होते ही रज्जु सर्प से शून्य हो जाती है अथवा जाग्रत का ज्ञान होते ही जाग्रत द्रष्टा स्वप्न से शून्य हो जाता है। ज्ञान को इसलिये भी सर्वश्रेष्ठ कहा गया है कि इसका फल यज्ञादि के फल की भाँति परोक्ष नहीं है बल्कि उसी प्रकार साक्षात अपरोक्ष है जैसे जाग्रत का ज्ञान होते ही यह सा त अपरोक्ष ज्ञान होता है कि मैं जाग्रत पुरुष हूँ स्वप्न पुरुष नहीं अथवा जैसे सूर्य के उपदेश से करण को अपरोक्ष ज्ञान हुआ कि मैं कुन्ती पुत्र हूँ दासी पुत्र अज्ञान से मानता रहा। इसी प्रकार ज्ञान होते ही मैं शुद्ध सच्चिदानन्द घन विभुचेतन हूँ ऐसा साक्षात अपरोक्ष होता है और कर्ता भोक्तापने की भ्रान्ति दूर हो जाती है अर्थात ज्ञान होते ही जाग्रत पुरुष अपने को परमार्थ पुरुष मानने लगता है। ज्ञान को इसलिये भी सर्वश्रेष्ठ कहा गया है कि इसका साधन करना बहुत सरल है और इसका फल नित्य मोक्ष है। हे अर्जुन! ज्ञानसे ही सर्व दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्दरूप सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान मुझ वासुदेव की प्राप्ति होती है अन्य साधन से नहीं। इस कारण ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ जानो। गीता अ० ९ श्लोक २।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन का प्रश्न २३ :—हे प्रभो! आप जगत के कौन कारण है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! मैं जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण हूँ। जैसे मकड़ी जाला का निमित्त कारण भी है और उपादन भी तथा स्वप्न साक्षी स्वप्न का निमित्त कारण भी है और उपादान भी। उसी प्रकार मैं जगत् का निमित्त कारण भी हूँ और उपादन भी हूँ। इस कारण अपना माया द्वारा मैं ही सर्व स्थावर जङ्गम भूत प्राणियों के रूप में प्रतीत हो रहा हूँ और इनका आधार अधिष्ठान भी हूं। गीता अ० ९ श्लोक १७,१८ व गीता अ० १० श्लोक २०,३९ व गीता अ० १३ श्लोक १५।

अर्जुन का प्रश्न २४—हे भगवन! ज्ञान योग द्वारा क्या मोक्ष का अधिकारी मैं भी हूँ?

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! यदि तू पापी होने से अपने को ज्ञान का अधिकारी नहीं समझता है तो तेरी भूल है। क्या जहाज मिलजाने पर अन्धे लँगड़े समुद्र पार नहीं हो सकते हैं अर्थात अवश्य पार हो सकते हैं। जहाजका मिलना कठिन है जहाज पर बैठ जानेपर पार होना कठिन नहीं इसी प्रकार मुझ परमेश्वर से ज्ञानका उपदेश मिलना कठिन है पार होना कठिन नहीं और यदि हमारी कृपासे तुम्हारी भाँति किसीको प्राप्त हो जाये तो सबसे बड़ा पापी होनेपर भी ज्ञानरूपी जहाजसे भवसागर उसी प्रकार पार हो जायेगा जैसे जाग्रत के ज्ञान के द्वारा स्वप्नमें महान पाप करनेवाले भी स्वप्नसे मुक्त हो जाते है। गीता अ० ४ श्लोक ३६। यदि तुझको फिर भी यह सन्देह होता हो कि मैं तो क्षत्री हूँ, ज्ञान द्वार मोक्ष प्राप्त करने में मेरा अधिकार नहीं है। अतः इस प्रकार की सन्देह भी नहीं होना चाहिये क्योंकि यदि मुमुक्षु बन कर वैश्य शूद्र तथा स्त्री भी मेरी अनन्य शरण प्राप्त कर लें तो वे भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निसन्देह मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। गंगा में जब गन्दे नाले भी मिलकर गंगा बन जाते हैं तो क्या स्त्री शूद्रादि मेरी शरण में आकर मेरा स्वरूप नहीं बन सकते हैं अर्थात अवश्य बन सकते हैं फिर क्षत्री ब्राह्मणों के लिये क्या कहना है। जो गंगा गन्दे नालों को भी अपने में मिला कर गंगा बनाने को तैयार है वह सरयू और जमुना नदी को अपने में क्यों न मिलायेगी। इसी प्रकार हे अर्जुन मैं सर्व का अधिष्ठान तथा सर्वात्मा होने से शरण में आने पर शूद्रादि पापियों को भी अपना शुद्ध स्वरूप सच्चिदानन्द बना लेता हूँ फिर तुम तो क्षत्री हो और हमारे प्रिय सखा एवं भक्त हो, तुमको मोक्ष का अधिकार होने में कदापि सन्देह नहीं होना चाहिये। पक्ष पात रहित बात तो यह है कि जैसे सोये हुये प्राणियों में सर्व को जागने में अधिकार है उसी प्रकार प्राणि मात्र को मेरे ज्ञान में अधिकार है परन्तु कुम्भकरण की नींद से भी अधिक गहरी नींदमें होने से वे जागना पसन्द नहीं करते। अतः जब वैश्य शूद्र स्त्रियों को भी मोक्ष में अधिकार है फिर तुमको मोक्षमें अधिकार क्यों नहीं अर्थात तुम निसन्देह मोक्ष के अधिकारी हो। अतः शरीर को अनित्य स्वप्न वत जानकर युद्ध में भी मेरा भजन करो। गीता अ० ६ श्लोक ३२,३३।

अर्जुन का प्रश्न २५ :—हे जगद्गुरो ! भजन किसे कहते हैं और उसका क्या फल होता है।

भगवान का उत्तर :—जैसे लोभी धन का तथा कामी स्त्री का आसक्ति पूर्वक चिन्तवन करता रहता है इसी प्रकार भक्ति पूर्वक मेरा निरन्तर चिन्तवन करना भजन कहलाता है। जैसे उत्तम पतिव्रता स्त्री निरन्तर पतिकी सेवा पूजामें लगी रहती है तथा प्रेमसे नमस्कार करती है उसी प्रकार भक्ति पूर्वक मेरी पूजा करना और नमस्कार करना भजन कहलाता है। जैसे मछली जल के लिये अपने प्राण निछावर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर देती है उसी प्रकार मुझ को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझना तथा परस्पर मेरा ही कथन करके सन्तोष को प्राप्त होना भजन कहलाता है। जैसे उत्तम सेवक समस्त कर्म अपने स्वामी के लिये स्वामी की आज्ञा से करता है उसी प्रकार सेवक सेव्य भाव से संसार को मुझ वासुदेव का बागीचा मानकर और अपने को माली जान कर मेरी आज्ञा से समस्त कर्म माली की भाँति करना तथा मेरे स्वरूप का साक्षात्कार करलेना अपने जीवन का लक्ष्य जानना और सर्वत्र मुझ वासुदेव की भावना करते करते राग द्वेष से रहित हो जाना और जैसे अविवेकी को देह में प्रीति होती है उसी प्रकार मुझ वासुदेव में अनन्य प्रेम करना भजन कहलाता है। जैसे जागने पर स्वप्न देह के समस्त धर्म कर्मों का अभिमान त्याग कर दिया जाता है उसी प्रकार मुझ वासुदेव के परमार्थ स्वरूप में जागकर देह मन इन्द्रियों के समस्त धर्म कर्मों का अभिमान छोड़ देना और मुझ सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठानवासुदेव को ही अपनी आत्मा जान लेना भजन कहलाता है। इस प्रकार के भजन का फल यह होता है कि पाप, शोक, मोह संशयभ्रम की अत्यन्त निवृत्ति होकर कृतकृत्यता प्राप्त हो जाती है अर्थात फिर कुछ जानना या पाना शेष नहीं रहता क्योंकि समस्त दृश्य को अपनी आत्मा में विवर्त रूप से रज्जु सर्पवत देखते हुए नहीं देखता। अतः नित्य निवृत्त अविद्या जनित भ्रम मात्र दुःखो की निवृत्ति तथा नित्य प्राप्त सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान परमानन्द रूप मुझ वासुदेव की प्राप्ति ही भजन का मुख्य फल है जो मुझ परमेश्वर की अनन्य शरणागति रूप भजन के बिना असम्भव है। स्वप्न से सम्बन्ध छोड़कर जाग्रत से सम्बन्ध करने के समान जाग्रत जगत से सम्बन्ध छोड़ कर परमार्थ स्वरूप सच्चिदानन्द मुझ वासुदेव से सम्बन्ध करलेना ही परम भजन है जिसका फल नित्य मोक्ष है। हे अर्जुन ! तमोगुण और रजोगुण को दबाकर सत्वगुण को बढ़ाना तथा सत्वगुण में स्थित होकर सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान मुझ वासुदेव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को ही सर्व के अन्तर बाहर व सर्व रूप जानना ही परम भजन है जिसका फल द्वैत बुद्धि की अत्यन्त निवृति है। विश्व की विराट से व तैजस की हिरण्यगर्भ से व प्राज्ञ की ईश्वर से एकता का चिन्तवन करके विराट को हिरण्य गर्भ रूप व हिरण्यगर्भ को ईश्वर रूप चिन्तवन करे तथा जैसे बरफ जल रूप होता है उसी प्रकार ईश्वर को ब्रह्मरूप चिन्तवन करे और वही मैं हूँ ऐसा निश्चय कर लेना परम भजन है जिसका फल निर्भयता की प्राप्ति है। परब्रह्म मुझ वासुदेव से अपने शुद्ध स्वरूप कूटस्थ आत्मा का अभेद निश्चय रूप भजन के द्वारा देह दृश्य में मिथ्या बुद्धि हो जाने से अहंता ममता का नाश हो जाता है जो भजन का ही फल समझना चाहिये क्योंकि भजन के बिना अहंता ममता का नाश नहीं हो सकता और अहंता ममता के नाश हुये बिना जीव दुःखों से छुटकारा नहीं पा सकता। अतः हे अर्जुन! तुम मुझ सच्चिदानन्द का अहर्निश उसी प्रकार भजन करो जैसे प्रतिबिम्ब को बिम्ब का व नदी को समुद्र का तथा घटाकाश को महाकाश का अथवा स्वप्न नर को स्वप्न साक्षी का भजन करना चाहिये। इस प्रकार मुझ सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान वासुदेव का भजन करने से ही तुम्हारा शोक दूर होगा। शोक की अत्यन्त निवृत्ति को ही भजन का फल समझो।

अर्जुन का प्रश्न २६ :—हे जगदीश्वर! क्या आप मुझे अपने विराट रूप के दर्शन के योग्य समझते हैं? यदि मुझे स्वरूप दर्शन के योग्य समझते हों तो दर्शन देने की कृपा कीजिये।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन जैसे जाग्रत का दर्शन स्वप्न नेत्रों से नहीं हो सकता उसी प्रकार मेरे विराट रूप का दर्शन इन लौकिक स्थूल नेत्रों से नहीं हो सकता। जैसे स्वप्न साक्षी ही स्वप्न में सर्व है उसी प्रकार जाग्रत साक्षी मैं वासुदेव ही जाग्रत में सर्व रूप हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैसे स्वप्नके सारे नेत्र, सारे श्रोत्र तथा सारे हस्त पादादि स्वप्न साक्षीके ही हैं उसी प्रकार यहाँ भी सर्व साक्षी मैं वासुदेव ही अनन्त हस्त पादादि से युक्त हूँ। मुझ वासुदेव से अपने को व विश्व को अन्य मानना महान मूर्खता है। अतः हे अर्जुन ! तुमको अधिकारी जानकर दिव्यदृष्टि अर्थात् ज्ञानदृष्टि देता हूँ। तुम मेरे अत्यन्त भीषण विराटरूप को देखो। जैसे अभीषण होतेहुये रज्जु अपनेको भीषण सर्परूपसे दिखला देती है उसी प्रकार मैं योगेश्वर अपनी योग माया से तुमको भीषण विराट रूप दिखलाता हूँ। जब योगी, राक्षस तथा देवता विना परिणाम को प्राप्त हुए ही अपने अनेक विचित्र रूप दिखला सकते हैं तब उनको शक्ति देने वाला योगेश्वर मैं वासुदेव विना परिणाम को प्राप्त हुये ही विराट रूप में तुमको क्यों नहीं दर्शन दे सकता हूँ जब कि तुम मेरे प्रिय सखा और अनन्य भक्त हो।

भगवान की कृपा से अर्जुन ने विराट रूप का दर्शन किया और भगवान से प्राप्त ज्ञानदृष्टि का परिचय देते हुये भगवान को देश काल वस्तु के अन्त से रहित, जगन्निवास, कार्य कारण रूप तथा सर्वाधिष्ठान होने से कार्य कारण से भी परे बतलाया अर्थात् भगवान को सर्वात्मा, सर्वव्यापक, सर्व रूप तथा सर्वातीत निश्चय कर लिया। गीता अ. ११ श्लोक ३७,३८,३९।

अर्जुन का प्रश्न २७:—हे भगवान ! आपके सगुण स्वरूप की उपासना करनेवाले श्रेष्ठ भक्त हैं या निर्गुण स्वरूप की उपासना करने वाले भक्त श्रेष्ठ हैं।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! निर्गुण का चिन्तवन देहाभिमानी के लिये उसी प्रकार कठिन है जैसे स्वप्ननर को जाग्रत का चिन्तवन असम्भव है। जैसे कोई राजा निन्द्रा के कारण स्वप्न में अपने को भिखारी देखने लगता है और जगा देने पर भिखारी नहीं रहता राजा हो जाता है उसी प्रकार अविद्या के कारण जीव देह दृश्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का स्वप्न देख रहा है और मेरी कृपा से ज्ञान द्वारा अविद्या नाश होने पर मेरे ही शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। अतः निर्गुण स्वरूप का जिसको ज्ञान हो जाता है उसको भक्त मत समझो वह तो ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। जो मेरे निर्गुण स्वरूप को नहीं जानते उन भक्तों में वह श्रेष्ठ हैं जो मेरे सगुण स्वरूप में श्रद्धा भक्ति पूर्वक उसी प्रकार निष्ठा रखते हैं जैसे मछलीकी निष्ठा जलमें होती है। उनको सांसारिक भोगों में बिलकुल आसक्ति नहीं रहती तथा ममता चिन्ता से रहित और निन्दा अस्तुति में वे समान रहते हुये अपनी भावना नुसार मेरे सगुण स्वरूप के ध्यान में लगे रहते हैं और सगुण चरित्रों का कथन श्रवण बड़े प्रेम से करते हैं। ऐसे मोक्ष के परम अधिकारी सगुण उपासकों को मैं सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ।

अर्जुन का प्रश्न २८ :—हे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान परमेश्वर! शरीर और जीव में तथा जीव और आपके स्वरूप में क्या भेद है।

भगवान का उत्तर :— हे अर्जुन शरीर और जीव में यह भेद है कि शरीर जड़ है अर्थात् न अपने को जानता है और न दूसरे को जानता है और जीव चेतन है जो शरीर का घटवत द्रष्टा है। जैसे घटाकाश घट से असंग है। उसी प्रकार जीवात्मा भी शरीर से असंग और प्रथक है। शरीर स्वप्नवत क्षणभंगुर है और जीवात्मा मेरा अंश होने से अविनाशी निर्विकार है। जैसे महाकाशका अन्श घटाकाश है उसी प्रकार जीव मेरा अन्श है। अतः जीव और मेरे स्वरूप में स्वरूपतः भेद नहीं उपाधिकृत भेद प्रतीत होता है। वास्तव में जीवात्मा रूप से अन्तःकरण में मैं ही विराजवान हूँ जैसे कोयला में अग्नि तथा तार में बिजली प्रकाश रूप से विराजवान हो जाती है। जैसे तरंग तथा जल में भेद नहीं वायु के कारण जल ही तरंग रूपसे भासता है उसी प्रकार जीव तथा मुझ वासुदेव में भेद नहीं अविद्या उपाधि द्वारा मैं ही जीव भी कहलाता हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन का प्रश्न २९ :—हे संशय विध्वंसक प्रभो! जीव को वन्धन में डालनेवाला कौन है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! अविद्या से उत्पन्न तमोगुण व रजोगुण व सत्वगुण ही पंच विषय व स्थूल सूक्ष्म शरीरों के रूप में परणित होकर सतबुद्धि व सुखबुद्धि तथा अहंता ममता और रागद्वेष द्वारा जीव को बन्धन करनेवाले हैं अर्थात् जन्म मरण के चक्र से निकलने नहीं देते।

अर्जुन का प्रश्न ३० :—हे सच्चिदानन्द प्रभो! तीनों गुणों से छूटने का क्या उपाय है और त्रिगुणातीत के लक्षण क्या हैं।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! जैसे निद्रा से उत्पन्न हुए स्वप्न से छुटकारा पाने के लिए जाग्रत की शरण लेना होगी उसी प्रकार अविद्या से उत्पन्न हुए तीनों गुणों से छुटकारा पाने के लिये मेरी अनन्य शरण ही एकमात्र उपाय है क्योंकि अविद्या जनित तीनों गुणों का व उनके कार्य देह दृश्य का मैं वासुदेव ही अधिष्ठान हूँ। त्रिगुणातीत पुरुष वही है जो अध्यस्त को अधिष्ठान रूप देखता है और सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द मुझ ब्रह्म को ही अपनी आत्मा जानता है। वह तीनों गुणों से व उनके कार्यों से उसी प्रकार कोई हानि लाभ नहीं मानता जैसे स्वप्न के गुण दोषों से जाग्रत में कोई हानि लाभ नहीं होती अथवा मृगजल से मरुभूमि गीली नहीं होती। जैसे मृगजल को मरुभूमि मात्र ही जानना चाहिये उसी प्रकार अविद्याजनित तीनों गुणों के कार्य रूप सुख, दुःख, मोह, शत्रु, मित्र, सोना मिट्टी पत्थर, प्रिय अप्रिय तथा मानापमानादि सर्व प्रपंच को गुणातीत पुरुष ब्रह्म रूप जानता है अर्थात् इन अनिर्वचनीय मायामात्र प्रतीतियों से अपने सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द स्वरूप को असंग निर्विकार निर्लेप जानता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है और अध्यस्त त्रिगुणात्मक प्रपंच से कभी किसी प्रकार का भय नहीं करता यही त्रिगुणातीत का लक्षण है। गीता अ० १४ श्लोक २२, २३, २४, २५। त्रिगुणातीत पुरुष मेरे परमधाम को नदी समुद्रवत प्राप्त होकर फिर संसार में नहीं लौटता।

अर्जुन का प्रश्न ३१ :—हे जगदात्मन ! आप का परमधाम क्या है, कहाँ है और कैसे प्राप्त होता है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! समस्त प्राणियों के अन्तिम प्राप्तव्य स्थान को परधाम कहते हैं। जैसे तरंगों का प्राप्तव्य स्थान जल, प्रतिबिम्ब का प्राप्तव्य स्थान बिम्ब, घटाकाश का प्राप्तव्य स्थान महाकाश तथा स्वप्न नरों का प्राप्तव्य स्थान स्वप्नसाक्षी है उसी प्रकार सम्पूर्ण स्थावर जंगम प्राणियों का प्राप्तव्य स्थान जाग्रतसाक्षी स्वयंप्रकाश निर्गुण निराकार व्यापक सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप मैं वासुदेव ही हूँ। अतः मेरे निर्गुणपरमार्थ स्वरूप को ही परमधाम जानो। जैसे तरंगें पूछें कि जल कहाँ है व भूषण पूछें कि स्वर्ण कहाँ है तथा स्वप्न नर पूछें कि स्वप्न साक्षी कहाँ है उसी प्रकार हे अर्जुन ! तुम्हारा प्रश्न है कि परमधाम कहाँ है। अतः तरंगों व भूषणों तथा स्वप्ननरों को जो उत्तर देना चाहिये वही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। जैसे तरंगोंमें जल, भूषणों में स्वर्ण तथा स्वप्न नरों में स्वप्न साक्षी सर्वत्र ओतप्रोत है और सर्वरूप होते हुये सर्वातीत है उसी प्रकार परमधाम स्वरूप मैं निर्गुण ब्रह्म सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा होने से समस्त स्थावर जंगम प्राणियों में सर्वत्र ओतप्रोत हूँ तथा माया से सर्व रूप होते हुए सर्वातीत हूँ। जैसे तरंगोंको जल व भूषणोंको स्वर्ण तथा स्वप्न प्राणियोंको स्वप्नसाक्षी नित्य प्राप्त है उसी प्रकार सर्व जीवों को परमधाम स्वरूप मैं निर्गुण निर्विकार व्यापक वासुदेव नित्य प्राप्त हूँ। जैसे तरंग का जल से वायु द्वारा कल्पित भेद प्रतीत होता है और वास्तव में अभेद है उसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार जीवों का मुझ परिपूर्ण सच्चिदानन्द ब्रह्म से अविद्या द्वारा कल्पित भेद प्रतीत होता है वास्तव में अभेद है। अतः परमधाम की प्राप्ति का उपाय ज्ञान ही है। जैसे स्वप्न के दीपक या सूर्य के प्रकाश से जाग्रत के पदार्थों का दर्शन होना असम्भव है क्योंकि स्वप्न की प्रातिभासिक सत्ता है और जाग्रत की व्यावहारिक सत्ता है उसी प्रकार जाग्रत के सूर्य चन्द्रादि मुझ सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द वासुदेव को प्रकाशित नहीं कर सकते क्योंकि जाग्रत के सूर्य चन्द्रादि की व्यावहारिक सत्ता है और मेरे निर्गुण स्वयंप्रकाश सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप की परमार्थ सत्ता है। जैसे जाग्रत के ज्ञान द्वारा निद्रा भंग होने पर ही जाग्रत अवस्था की प्राप्ति होती है उसी प्रकार मुझ सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान परमार्थ स्वरूप के ज्ञान द्वारा अविद्या नाश होने पर ही मुझ परमधाम स्वरूप वासुदेव की प्राप्ति होती है। अतः नित्य निरन्तर नाम रूपात्मक प्रपंच को रज्जु में सर्प और मरुभूमि में मृगजल वत अध्यस्त जानकर सतबुद्धि व सुख बुद्धि तथा अहंता ममता वासनाओं का परित्याग करो और उपाधियों का वाध करके मुझ परब्रह्म वासुदेव से मुख्य समानाधिकरण समझो जैसे घटाकाश का महाकाश से मुख्य समानाधिकरण होता है। इस प्रकार दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान द्वारा मेरे परमधाम को प्राप्त करो जिसको प्राप्त करके फिर संसार का दर्शन नहीं होता जैसे दिन में रात्रि का दर्शन नहीं होता।

अर्जुन का प्रश्न ३२ :—हे भगवान ! आप के परमधाम को प्राप्त होकर जीव फिर वापिस क्यों नहीं लौटता।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! जैसे तरंग जलका व प्रतिबिम्ब बिम्ब का और घटाकाश महाकाश का अन्श है उसी प्रकार जीव मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म के अन्श हैं, जैसे जल वायु के अभाव में तरंग रूप धारण नहीं कर सकता तथा घटाकाश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घट के अभाव में महाकाश रूप हो जाता है और घट के विना घटाकाश रूप धारण नहीं कर सकता तथा प्रतिविम्ब दर्पण के विना प्रतिविम्ब भाव को प्राप्त नहीं हो सकता उसी प्रकार अविद्या के अत्यन्ताभाव हो जाने पर जीव मुक्त सच्चिदानन्द ब्रह्म से अभिन्न हो जाता है और अविद्या के अत्यन्ताभाव हो जाने से पुनः जीव भाव को प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। अतः हे अर्जुन! सत्वगुण में स्थित होकर दैवीसम्पत्ति प्राप्त करो और आसुरी सम्पत्ति का परित्याग करो तब मेरे परमधाम के अधिकारी बनोगे।

अर्जुन का प्रश्न ३३ :—हे सर्वाधार परमेश्वर! दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा कौन कौन हैं।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! अन्तःकरण के मल विक्षेप आवरण दोष ही आसुरी सम्पदा के मूल हैं और मल विक्षेप आवरण के नाशक क्रमशः कर्म उपासना ज्ञान दैवी सम्पदा के मूल हैं। परमार्थ सत्ता में अभिमान दृढ़ करके व्यावहारिक सत्ता से निर्भय हो जाना दैवी सम्पत्तिमें सर्व श्रेष्ठ मुख्य गुण हैं। अन्तःकरणके दोषोंका अभाव, निरन्तर ब्रह्म भावना से भावित रहना, मन इन्द्रियों का वश में रहना, सात्विक दान, यज्ञ तथा तप करने का स्वभाव, स्वाध्याय करने का व्यसन, छल कपट से रहित सरल व्यवहार, अहिंसा, सत्य, रागद्वेष का त्याग, शान्ति, निन्दा चुगली न करने का स्वभाव, दया, लोलुप्ता का अभाव, कोमलता, लज्जा, तेज अर्थात् दूसरों पर सात्विक प्रभाव डालने की शक्ति, क्षमा, धैर्य अर्थात् सुख दुख से अपना रंचक मात्र हानि लाभ न मानना, शरीर मन इन्द्रियों की पवित्रता, वैर का अभाव तथा देह के मान से अपना मान न समझना, ये सब दैवी गुण हैं। दैवी सम्पत्ति के विपरीत दम्भ दर्प, काम, क्रोध, लोभ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोह अभिमानादि आसुरी सम्पत्ति समझना चाहिये जो मेरे अविनाशी अन्श जीव को शूकरकूकर आदि नीच योनियों में लगातार गिराया करती है। हे अर्जुन! दया, क्षमा अहिंसा आदि बहुत से दैवी गुण तुम्हारे अन्दर आगये हैं। अतः अब तुम चिन्ता मत करो क्योंकि तुम मेरे स्वरूप में दृढ़ निष्ठाद्वारा अवश्य मोक्ष प्राप्त करोगे। दैवी सम्पत्ति से युक्त होने पर ही मेरे स्वरूप में दृढ़ निष्ठा होती है तथा शास्त्र विधि से स्वधर्म पालन करने से दैवी सम्पत्ति प्राप्त होती है। अतः शास्त्र द्वारा ही स्वधर्म को निश्चय करके निष्काम भाव से पालन करो।

अर्जुन का प्रश्न ३४ :—हे भगवन! जो लोग शास्त्र से अनभिज्ञ हैं और केवल अन्ध विश्वास से यज्ञ दान तथा तपादि शुभ कर्म करते हैं, उनकी निष्ठा सात्विकी है या राजसी है या तामसी है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! निष्ठा श्रद्धा के अनुसार होती है। तामसी श्रद्धावाले को तामसी निष्ठा होती है और राजसी श्रद्धावालेकी राजसी निष्ठा होती है और सात्विकी श्रद्धावालेकी सात्विकी निष्ठा होती है। हे अर्जुन! श्रद्धा भी अन्तःकरण के अनुसार होती है। जिनका अन्तःकरण सत्वगुण प्रधान है उनकी सात्विकी श्रद्धा होती है और राजसी अन्तःकरण में राजसी श्रद्धा होती है और तामसी अन्तःकरण में तामसी श्रद्धा होती है। अतः सत्वगुण प्रधान जिनका अन्तःकरण है वे सत्वगुण प्रधान देवताओं की उपासना करते हैं और राजसी अन्तःकरण वाले यक्ष राक्षसों की पूजा करते हैं और तामसी अन्तःकरण वाले भूतप्रेतों की पूजा करते हैं। हे अर्जुन! अन्तःकरणों में भी गुणों की प्रधानता भोजन के अनुसार होती है। जो सदैव स्वभाव से तामसी आहार करते हैं उनका अन्तःकरण तामसी होता है और जो रजोगुणी भोजन करने के आदी हैं उनका अन्तःकरण रजोगुणी होता है और जो सात्त्विक भोजन करते हैं उनका अन्तः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करण सत्वगुणी होता है। सात्त्विक, राजसी, तामसी भोजन के अति-रिक्त सात्विक राजसी तामसी यज्ञ दान तप भी अन्तःकरणको सात्विक राजसी तामसी बनाया करते हैं।

अर्जुनका प्रश्न ३५ :—हे जगद्गुरो ! सात्विक राजसी तामसी यज्ञदान तप को पहिचान क्या है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! सात्विक यज्ञदान तप उस-को समझना चाहिये जो केवल मेरी आज्ञा समझकर फलाकाङ्क्षा तथा अहंकारसे रहित होकर श्रद्धा प्रेमपूर्वक किया जाता है। राजसी यज्ञदान तप उसको समझना चाहिये जो फल की इच्छा से तथा सत्कार मान पूजा कराने के लिये अभिमान और दम्भ पूर्वक किया जाता है। तामसी यज्ञदान तप उसको समझना चाहिये जो श्रद्धा के बिना ही दक्षिणा और मन्त्रों से रहित दूसरों की हानि और तिरस्कार करने के लिये बहुत कष्ट से किया जाता है। अतः मेरे परमार्थ रूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सात्विक आहार और सात्विक यज्ञदान तप से अन्तः करण को शुद्ध करना चाहिये।

अर्जनका प्रश्न ३६ :—हे हृषीकेश! निष्काम कर्मयोग और ज्ञानयोग का स्वरूप प्रथक प्रथक करके बतलाने की कृपा कीजिये।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन! निष्काम कर्म उन्हीं यज्ञ तप दानादि शुभ कर्मों को कहते हैं जो फल की आसक्ति और अहंकार से रहित होकर सिद्धि असिद्धि में सम रहनेवाले सात्विक कर्ता द्वारा भगवदर्पण बुद्धि से किये जाते हैं।

हे अर्जुन! निष्काम कर्म योग का पालन करने में वही समर्थ हो सकता है जिसको सृष्टि के कर्ता पालक संहरता मुझ ईश्वर में कम से कम इतना तो अवश्य प्रेम हो जितना प्रेम उत्तम सेवक या स्त्री

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को अपने स्वामी से तथा उत्तम पुत्र को अपने पिता से होता है। निष्काम कर्मी वही है जिसको केवल मुझ सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ वासुदेव में ही ममत्व हो तथा जो सब कुछ मुझ जगदीश्वर का ही समझता हो और जिसमें अपने परायेकी भावना का अत्यन्ताभाव हो गया हो। अर्थात् मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ऐसा दृढ़ निश्चय वाला ही निष्काम कर्मी हो सकता है। अहंता ममता तथा विषयों की कामनाओं में जकड़े हुए प्राणी निष्काम कर्म करने में असमर्थ हैं। जिसने अपने शरीर, प्राण, तथा मन इन्द्रियों को मुझ वासुदेव को अर्पण कर दिया है वही ठीक ठीक निष्काम कर्मयोगी है। जैसे धर्मशाला और रेल के डब्बे में बैठे हुए यात्री धर्मशाला और रेल के डब्बे से ममत्व नहीं करते इसी प्रकार निष्काम कर्मी अपने शरीर से ममत्व नहीं करता तथा स्त्री पुत्रादि से भी उसीप्रकार ममत्व नहीं करता जैसे एक यात्री दूसरे यात्रियोंसे ममत्व नहीं करता। जैसे माली बागीचा से ममत्व तो नहीं करता परन्तु मालिक की आज्ञासे बागीचा की सेवा अहर्निश करता है उसी प्रकार निष्काम कर्मी सर्वत्र आसक्ति और ममत्व से रहित होनेपर भी ईश्वर की आज्ञा से ईश्वरार्थ स्वधर्म को निष्कामभावसे धैर्य और उत्साह पूर्वक सुख दुःख हानि लाभमें हर्ष शोक से रहित होकर पालन करता है क्योंकि वह निष्कामकर्मी मुझ सर्व नियन्ता वासुदेव को ही फल दाता समझता है और उसको यह पूर्ण विश्वास होता है कि जो मैं फल देता हूँ उसी में उसका परम कल्याण है। सेवक सेव्य भाव से भेद उपासना निष्काम कर्मयोग के और अभेद उपासना रूप अहंग्रह ध्यान ज्ञानयोग के अन्तर्गत है। ज्ञान योगी स्थूल देह, कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों तथा मन बुद्धि चित्त अहंकार से आतमा को उसी प्रकार प्रथक और असंग देखता है जैसे घट से घटाकाश प्रथक और असंग होता है अथवा स्वप्न के शरीर प्राण इन्द्रियों से स्वप्न साक्षी प्रथक असंग होता है। वह ज्ञानयोगी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीर प्राण मन इन्द्रियों को तथा उनके धर्म विकारों को अपने स्वरूप में उसी प्रकार नहीं देखता जैसे ठूँठ की छाया तथा उस छाया का घटना बढ़ना धर्म ठूँठ में नहीं देखा जा सकता। वह ज्ञानयोग में निष्ठा रखनेवाला आत्मदर्शी देह दृश्य के समस्त विकारों से उसी प्रकार अपने स्वरूप की हानिलाभ नहीं समझता जैसे मृगजल से बालू गीली नहीं हो सकती अथवा नीलमासे आकाश नीला नहीं हो जाता। अर्थात व्यष्टि अज्ञान के साक्षी अधिष्ठान कूटस्थ आत्मा को अपना स्वरूप जानकर समष्टि अज्ञान के साक्षी अधिष्ठान मुझ सच्चिदानन्द वासुदेव से अभिन्न समझना तथा अज्ञान व अज्ञान जनित प्रपंच को ज्ञान द्वारा बाध (मिथ्या निश्चय) करना ज्ञानयोग का स्वरूप है। हे अर्जुन इस ज्ञान योग के तीन महान फल हैं। १—परमानन्द घन ब्रह्म मुझ वासुदेव में आत्म भावना दृढ़ हो जाना। २—प्रलय के भीषण दुःखों को भी स्वप्न वत मिथ्या निश्चय करके अपने परमार्थ स्वरूप विभु आत्मा में उनसे किसी प्रकार का क्षोभ या विकार न देखना। ३—प्रारब्ध क्षय होने पर पुनर्जन्म का अत्यन्ताभाव हो जाना। अतः हे अर्जुन! निष्काम कर्म योग से अन्तः करण शुद्ध करके ज्ञान योग द्वारा सर्व देह प्राण मन इन्द्रियों का व उनके धर्मों का उसी प्रकार त्याग अर्थात बाध करो जैसे रज्जु के ज्ञान द्वारा रज्जु सर्प का बाध किया जाता है। तत्पश्चात अपने निज स्वरूप कूटस्थ आत्मा को मुझ सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द वासुदेव से अभिन्न निश्चय करो। इस प्रकार की अनन्य शरण को ही ज्ञान योग कहते हैं। जिसका फल नित्य मोक्ष है। गीता अ० १४ श्लोक २।

अर्जुन का प्रश्न ३७ :—हे दीनबन्धु! ज्ञान कितने प्रकार का होता है और उनका क्या स्वरूप है।

भगवान का उत्तर :— हे अर्जुन ज्ञान तीन प्रकार का होता है। पहला तामसी ज्ञान होता है, दूसरा राजस ज्ञान होता है और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीसरा सात्विक ज्ञान होता है। अनेक जन्मों में तामस यज्ञ तपदान आदि कर्मों के अनुष्ठान से तामस ज्ञान उत्पन्न होता है जो मूढ़ योनियों का कारण है। देह को ही अथवा देह के बराबर ही ईश्वर को जानना तामस ज्ञान कहलाता है। देह ही आत्मा है और सावयव मूर्ति ही परमेश्वर है, इससे परे अन्य निरवयव सच्चिदानन्द तत्व नहीं है यह तामस ज्ञान हेतु रहित अर्थात् युक्ति शून्य है क्योंकि ऐसा मानने से देह तथा मूर्त्तियों के नाश से आत्मा और मुझ परमात्मा का भी नाश हो जाना चाहिये। हे अर्जुन यदि यह कहो कि प्रतिमा के आकार वाला ईश्वर अभीष्ट वस्तुओं को देता है फिर प्रतिमा को ईश्वर क्यों न माना जाय। इस का समाधान यह है कि श्रद्धा भक्ति से अराधित मैं सर्वगत परमेश्वर ही उस प्रतिमा में स्थित होकर अभीष्ट वस्तुओं को देता हूँ। प्रतिमा मात्र को फल देने वाला मत समझो। अनेक जन्मों में राजस यज्ञ तप दान आदि के अनुष्ठान से राजस ज्ञान उत्पन्न होता है जो स्वर्ग आदि अभ्युदय का हेतु है। मुझ सर्व व्यापक सच्चिदानन्द वासुदेव से आत्मा को भिन्न, जानना और प्रत्येक शरीर में अलग अलग आत्मा जानना तथा आत्मायें अनेक हैं और कर्ता भोक्ता परिच्छिन्न हैं ऐसा ज्ञान राजस मानना चाहिये। अनेक जन्मों में सात्विक यज्ञ तप दान आदि के अनुष्ठान से सात्विक ज्ञान उत्पन्न होता है जो मोक्षका ही कारण होता है। तत्वज्ञानी ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त स्थावर जङ्गम शरीरोंमें वस्त्रमें सूतके समान सच्चिदानन्द स्वरूप मुझ सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा वासुदेव को असंग रूप से व्यापक देखता है अर्थात भूतों के उत्पन्न नाश होने से तथा आने जाने से स्वयं उत्पत्ति विनाश तथा आना जाना आदि धर्मों से निर्मुक्त मुझ निर्विकार कूटस्थ ब्रह्म को जानता है। जैसे घटाकाश और मठाकाश में सौपाधिक भेद है स्वरूपतः भेद नहीं उसी प्रकार जीव की उपाधि अविद्या या अन्तःकरण और मुझ ईश्वर की उपाधि माया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का वाध कर देने पर आकाश वत केवल शुद्ध बुद्ध मुक्त परिपूर्ण सच्चिदानन्द तत्व शेष रहता है वही मैं हूं ऐसा आत्म साक्षात्कार कर लेने को सात्विक ज्ञान समझो ! सात्विक ज्ञान को प्राप्त हुआ पुरुष सब यह और मैं ब्रह्म ही हूँ इस प्रकार अपने को और सब को ब्रह्म स्वरूप ही देखता है। परन्तु ऐसा सात्विक ज्ञान सात्विकी धारण के विना प्राप्त नहीं हो सकता।

अर्जुन का प्रश्न ३८ :—हे भगवन ! धारणा कितने प्रकार की होती है और उनका क्या स्वरूप है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन ! धारणा तीन प्रकार की होती है। सतोगुणी बुद्धि में सात्विकी धारणा और रजोगुणी बुद्धि में राजसी धारणा तथा तमोगुणी बुद्धि में तामसी धारणा होती है। मुझ सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द वासुदेव का चिन्तवन करनेमें जिस शक्ति से विजातीय बृत्तियों को रोका जाता है और मन इन्द्रियों की वाहर की चेष्टाएँ बन्द की जाती हैं उस शक्ति को सात्विकी धृति कहते हैं। सात्विकी धृति प्राप्त होने पर पुरुष भारी से भारी दुःखों को प्रसन्नतापूर्वक सहन कर सकता है और काम क्रोध के वेग को रोकनेमें समर्थ होता है तथा सर्वत्र आत्माको और आत्मा में सर्व को देखने में समर्थ होता है। सात्विकी धृतिके विना सात्विक ज्ञान असम्भव है और सात्विक ज्ञानके लिए सात्विकी धारणा परमावश्यक है। अतः हे अर्जुन ! मोक्ष को धारण करने वाली धारणा को सात्विकी धृति समझो। जो धारणा धर्म, अर्थ तथा काम में प्रेरित करे और निष्काम न होने दे उसको राजसी धृति कहते हैं। इस राजसी धृति द्वारा मनुष्य धर्म अर्थ काम को अवश्य कर्तव्य रूप से निश्चय करता है और मोक्ष पर श्रद्धा नहीं करता। जो धारणा ठीक समय पर जागने न दे और ब्रह्म मुहूर्त में भी सोते रहने की प्रेरणा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करे तथा कर्म करने के समय भय शोक विषाद और मद से युक्त रक्खे उसको तामसी धृति कहते हैं। हे अर्जुन धृति को बुद्धि की एक वृत्ति समझना चाहिये। अतः जब तक राजसी तामसी बुद्धि है तब तक राजसी तामसी धारणा का त्याग असम्भव है। इस कारण राजसी तामसी बुद्धि का त्याग करके सात्विकी बुद्धि प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये। गीता अ० १८ श्लोक ३३,३४,३५,।

अर्जुन का प्रश्न ३९ :—हे भगवन! तामसी राजसी सात्विकी बुद्धि की क्या पहिचान है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन सात्विकी बुद्धिमें ही सात्विकी धारणा और सात्विक ज्ञान होता है। जिस बुद्धि में ऐसा निश्चय है कि अविद्या जनित देह दृश्य में अहंता ममता करके सत बुद्धि और सुख बुद्धि पूर्वक प्रवृत्ति बन्धन का कारण है तथा आत्मा के शुद्ध निर्गुण निर्लेप असंग अकर्ता व्यापक स्वरूप के साक्षात्कार के द्वारा अविद्या नाश करके देह दृश्य में अहंता ममता व सत बुद्धि व सुख बुद्धि तथा कर्तृत्व भोक्तृत्व भ्रान्ति को निवृत्त कर देने से ही मोक्ष सिद्ध होता है उस बुद्धिको सात्विकी समझना चाहिये। उस सात्विकी बुद्धिको यह भी यथावत ज्ञात होता है कि क्या करने योग्य है और क्या त्यागने योग्य है अर्थात् उसको कर्तव्य और अकर्तव्य में संशय और भ्रम नहीं होता जैसा तुमको संशय हो रहा है। बन्ध रूप जन्ममरण के कारण अज्ञान रूप भय को तथा अज्ञान रूप भय को नाश करने वाले ज्ञानरूप अभयको भी जो बुद्धि यथावत जानती है उस बुद्धि को सात्विकी समझना चाहिये। उस सात्विकी बुद्धि को यह भी निश्चय होता है कि अविद्या तथा अविद्या जनित अहंता ममता पूर्वक देह दृश्य का भान ही बन्ध है तथा मुझ सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द परमार्थ स्वरूप वासुदेव से जीव का शुद्ध स्वरूप उसी प्रकार अभिन्न है जैसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घटाकाश से महाकाश अभिन्न होता है और आत्मा से अभिन्न मेरे निर्गुण स्वरूप ब्रह्म में प्रपंच का अत्यन्ताभाव है। सात्विकी बुद्धि में इस प्रकार के ज्ञान होने पर ही अज्ञान सहित जन्म मरण रूप दुःख की अत्यन्त निवृत्ति और सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान परमानन्द रूप मुझ बासुदेव की अभिन्न रूप से प्राप्ति होती है। इसी को मोक्ष कहते हैं। सात्विकी बुद्धि में मोक्षका भी यथावत ज्ञान होता है। हे अर्जुन! जो बुद्धि तुम्हारी बुद्धि के समान शास्त्र विहित व निषिद्ध कर्मों को तथा देश काल आदि के अनुकूल प्रतिकूल होने पर कर्तव्य और अकर्तव्य को यथावत नहीं जानती अर्थात् इनके निर्णय में संशय युक्त है उस बुद्धि को राजसी कहना चाहिये। जैसे चतुर्थ आश्रमी सन्यासीको यदि कोई कितना भी कष्ट दे तब भी हिंसा करना उसका कर्तव्य नहीं परन्तु राजा को न्याय पूर्वक प्राप्त हुए युद्ध में अन्यायी शत्रुओं की हिंसा करना ही कर्तव्य है तथा अहिंसा का पालन अकर्तव्य है। परन्तु युद्ध में भी राजा यदि यह संशय करे कि मेरे लिये हिंसा कर्तव्य है या अहिंसा तो उसकी बुद्धि राजसी समझना चाहिये। यदि वह लाख समझाने पर भी यही निश्चय करे कि युद्धमें हिंसा करना महान पाप है तथा हिंसा से बचने के लिये युद्ध से भाग जाना ही परम धर्म है तो उसकी बुद्धि तामसी समझना चाहिये। तामसी बुद्धि की यही पहिचान है कि वह सम्पूर्ण पदार्थों को विपरीत ग्रहण करती है अर्थात् दुःख को सुख व सुख को दुख तथा सत को असत व असत को सत और अनात्मा को आत्मा व आत्मा को अनात्मा तथा कर्ता को अकर्ता व अकर्ता को कर्ता और धर्म को अधर्म तथा अधर्म को धर्म दुराग्रह पूर्वक निश्चय करती है। गीता अ. १८ श्लोक ३०,३१, ३२। हे अर्जुन राजस तामस गुणों का त्याग करके सात्विकी बुद्धि बनाना चाहिये क्योंकि सात्विकी बुद्धि से ही सात्विक सुख की प्राप्ति होती है जिसके प्राप्त होने पर दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है और जीव कृतकृत्य हो जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन का प्रश्न ४० :—हे भगवन! सुख कितने प्रकार के होते हैं और उनका क्या स्वरूप है।

भगवान का उत्तर :—हे अर्जुन समस्त प्राणी दुख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति चाहते हैं और इसी लक्ष्य से नाना प्रकार के साधन करते हैं परन्तु अधिकांश प्राणी दुख की अत्यन्त निवृत्ति और अविनाशी परम सुख की प्राप्ति का उपाय नहीं जानते इसी कारण सुख के प्राप्त करने और दुख से बचने का उद्योग करते रहने पर भी असफल रहते हैं। हे अर्जुन! जैसे सर्व तरंगों की आत्मा जल है उसी प्रकार सर्व जीवों की आत्मा मैं परमानन्द स्वरूप सर्वाधिष्ठान व्यापक वासुदेव हूँ परन्तु अज्ञान के कारण जीव मेरे शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप को अपनी आत्मा नहीं जानते और जैसे कोई राजा निद्रा के कारण दुःख मय स्वप्न देखने लगे उसी प्रकार जीव भी अज्ञान के कारण स्वर्ग नरक तथा चौरासी लक्ष योनियों का दुःखमय स्वप्न देख रहे हैं। जैसे निद्रा के कारण नित्य प्राप्त जाग्रत का राज्य उस सोये हुये राजा को अप्राप्त सा हो गया और नित्य निवृत्त स्वप्न प्रत्यक्ष दुख देने लगा उसी प्रकार मुझ सर्व भूतान्तरात्मा वासुदेव के अज्ञान से नित्य प्राप्त परमानन्द स्वरूप अप्राप्त सा हो गया और नित्य निवृत्त देह दृश्य प्रत्यक्ष दुख देने लगा। जैसे स्वप्न की निवृत्ति और जाग्रत के राज्य की प्राप्तिका एकमात्र साधन जागना है उसी प्रकार नित्यनिवृत्त जन्ममरणादि दुखों की निवृत्ति का और नित्य प्राप्त परमानन्द स्वरूप की प्राप्ति का एकमात्र साधन मेरे परमार्थ स्वरूप सच्चिदानन्द सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा वासुदेव का दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान ही है। अतः दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान द्वारा मुझ परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को अपनी आत्मा जान कर कृतकृत्य हो जाना ही सात्विक सुख है। परन्तु बुद्धि को सात्विकी बनाने में अर्थात् मल विक्षेप आवरण रहित करने में निष्काम कर्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपासना व विवेक वैराग्य षट सम्पत्ति मुमुक्षुता तथा श्रवण मनन निदिध्यासन का लगातार अभ्यास करना पड़ता है जो अतिकठिन होने से प्रारम्भ में विष के समान है तथा ईश्वर, गुरु, शास्त्र और आत्माके अनुग्रह से अन्त में जब परमानन्द की प्राप्ति होती है जिसमें सूर्य में अन्धकार की भाँति दुःखों का अत्यन्ता भाव है तब मुक्त परमानन्द स्वरूप सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान ब्रह्म को अपना ही स्वरूप अनुभव करना अमृत के समान जान पड़ता है। यह सात्विक सुख मल विक्षेप आवरण रहित अत्यन्त सूक्ष्म सात्विकी बुद्धि से ही प्राप्त हो सकता है क्योंकि यह परम सुख इन्द्रियों से अतीत है। इस सात्विक सुख को ब्रह्मानन्द कहते हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध पंचविषयों से इन्द्रियों का संयोग होने पर जिस सुख की अनुभूति होती है उसको राजस सुख समझना चाहिये। जैसे जल स्थिर होने पर जल में मुख का प्रतिविम्ब दीखने लगता है और जल के चंचल होने पर प्रतिविम्ब दीखना बन्द हो जाता है उसी प्रकार अनुकूल विषय के प्राप्त होने पर मन स्थिर हो जाता है और स्थिर मन अन्तर मुख हो जाता है जिसमें परमानन्द स्वरूप साक्षी आत्मा का प्रतिविम्ब दिखाई पड़ने लगता है यही राजस सुख या विषयानन्द कहलाता है। अज्ञानी इस विषयानन्द को अपनी आत्मा का प्रतिविम्ब नहीं जानता बल्कि विषय से आया हुआ मानता है और इसी कारण उस विषय में आसक्ति हो जाती है। यह प्रारम्भ में अमृत के समान मालूम होता है परन्तु बल, वीर्य, बुद्धि, धनादि का नाशक तथा नरकादि का हेतु होने से परिणाम में विष के समान ज्ञात होता है। इस प्रकार का सुख राजस माना गया है। हे अर्जुन! जिस सुख में इन्द्रियों और विषयों के संयोग की आवश्यकता पड़ती है उस सुख को सात्विकी कदापि न समझना। उसको वार बार जन्म मरणका हेतु होनेसे विषसे भी अधिक दुखदाई समझना चाहिये क्योंकि विष खाने पर एक बार ही मारता है परन्तु विषय देखने सुनने स्पर्श करने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्र से पुनः पुनः जन्म मृत्यु के कारण होते हैं। जो सुख निद्रा आलस्य प्रमाद से उत्पन्न होता है उसको तामस सुख कहते हैं। निद्रा आलस्य और प्रमाद काल में मन तमोगुणमें स्थित होकर संकल्प रहित हो जाता है और निज स्वरूप परमानन्द आत्मा के प्रतिविम्ब से युक्त हो जाता है जिसकी अनुभूति तामस सुख जानना चाहिये। अज्ञानी इस तामस सुख को अपनी आत्मा का प्रतिविम्ब न जान कर निद्रा आलस्य तथा प्रमाद से आया हुआ मानता है जिससे निद्रा आलस्य प्रमाद में आसक्त होता जाता है। गीता अ० १८ श्लोक ३६, ३७,३८, ३९॥ अतः मोक्ष के कारण आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिये रजोगुण तथा तमोगुण को दबाकर सत्वगुण को बढ़ाने की आवश्यकता है क्योंकि सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है। सत्वगुण बढ़ाने के लिये सात्विक यज्ञ तप दान आदि सत्कर्म करना चाहिये। अतः दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष का मूल निष्काम भाव से स्वधर्म पालन है। ब्राह्मण क्षत्री वैश्य तथा शूद्र चारों वर्णों के स्त्री पुरुष क्रमशः अपने अपने शमादि, शौर्यादि, कृषि आदि तथा सेवा आदि स्वधर्मों को निष्काम भाव से ईश्वरार्पण बुद्धि पूर्वक पालन करने के द्वारा अपने अपने अन्तःकरणों को शुद्ध कर सकते हैं और शुद्ध अन्तःकरणों में दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। हे अर्जुन त्रिलोकी त्रिगुणात्मक है और मैं वासुदेव त्रिगुणातीत हूँ तथा सब जीवों की उसी प्रकार आत्मा हूँ जैसे सर्वघटाकाशों की आत्मा महाकाश और सर्व प्रतिविम्बों की आत्मा विम्ब होता है। अतः जीव के शुद्ध स्वरूप आत्मा का मुझ सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान वासुदेव से घटाकाश महाकाशवत मुख्य समानाधिकरण समझो और व्यष्टि समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधि रूप शरीरों व उनकी अवस्थाओं तथा धर्म विकारों का मुझ सर्वाधार सर्वाधिष्ठान ब्रह्म में ठूंठ में पुरुषवत बाध समानाधिकरण जानों क्योंकि मेरे परमानन्द परमार्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूप का साक्षात्कार होते ही अविद्या जनित स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच का उसी प्रकार बाध हो जाता है जैसे रज्जु के ज्ञान से रज्जु सर्प का और ठूंठ के ज्ञान से ठूंठपुरुष का तथा सूर्य किरणों के ज्ञान से मृगजल का बाध हो जाता है।

भगवान का प्रश्न ४१ :—हे अर्जुन ! तुमने हमारे उपदेश को सावधान चित्त से सुनकर अपने अज्ञान को नष्ट करके कृतकृत्यता प्राप्त कर ली है या नहीं। यदि इतना उपदेश करने पर भी मोह संशय भ्रम दूर न हुए हों तो फिर दूसरे प्रकारसे उपदेश करूं क्योंकि यह आचार्यका कर्तव्य है कि किसी प्रकारसे शिष्यको कृतार्थ करना चाहिये।

अर्जुन का उत्तर :—हे मोह अन्धकार के नाश कर्ता सूर्य ! आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया। अब मैं परम शान्तिको प्राप्त होगया हूँ और न तो अब मुझे किसी कर्मको करनेसे कुछ लाभ है तथा न करने से हानि है। यदि सहस्र सूर्य उदय हो जाते तो भी मेरे हृदय का मोह अन्धकार दूर नहीं होता तथा सहस्र चन्द्रमा एक साथ उदय हो जाते तब भी वे सब मेरे हृदय की तपन को निवृत्त नहीं कर सकते। परन्तु हे अच्युत ! आपने अमृतरूपी बचनोंका सुधापान कराया है जिस से समस्त दुःख सन्तापों का मूल सहित अत्यन्त नाश हो गया है तथा अनेक जन्म जन्मान्तरों का हृदय में जो मैल था वह नष्ट हो गया है। हे भगवन ! मेरा देहाभिमान निवृत्त हो गया है और अब मैं निश्शङ्क होकर अपने परमार्थ स्वरूप अजन्मा असंग अविनाशी, परमशान्त, अनन्त, निराकार, निर्विकार, सहज निर्विकल्प, सर्वात्मा, सर्वाधिष्ठान, सच्चिदानन्द तत्व में सर्वदा स्थिति हूँ जो आपका परम धाम व परम पद अर्थात निर्गुण स्वरूप है। अब मुझ को सर्व जगत वासुदेव रूप ही भासता है। अब मुझे नित्य प्राप्त की प्राप्ति हुई है और नित्य निवृत्त दुःखोंका अत्यन्ताभाव निश्चय हुआ है। पहले मैं आपके परमार्थ स्वरूप सर्वदुःख रहित परम धामको अपनेसे भिन्न परोक्ष मानता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था परन्तु अब घटाकाश जैसे महाकाश से अभिन्न है और व्यापक है उसी प्रकार मेरा पंचकोशातीत, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का प्रकाशक वास्तविक स्वरूप आप के व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप से अभिन्न है और व्यापक है, ऐसा दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान मुझे हो गया है। स्वप्न से जागने की भाँति मेरे समस्त भय दूर हो गये हैं और स्वजनों का बध करने से पाप लगेगा या नहीं, आत्मा कर्ता है या नहीं इत्यादि समस्त सन्देहों का अत्यन्ताभाव हो गया है तथा अविद्या कृत कर्तृत्व भोक्तृत्व भ्रम दूर हो गया है और आप के अनुग्रह से अब मुझे कुछ पाना या जानना शेष नहीं रहा। अब मैं अज्ञान संशय विपर्यय रहित कृतार्थ हुआ हूँ क्योंकि आप के वचनामृत के श्रवण से प्रमाण गत सन्देह और मनन से प्रमेय गत सन्देह तथा निदिध्यासन से विपरीत भावना मैं नष्ट कर चुका हूँ। अब मुझे कुछ भी कर्तव्य नहीं। मैं अक्रिय असंग कूटस्थ व्यापक सच्चिदानन्द आत्मा हूँ ऐसी सहज यथार्थ स्मृति मुझे प्राप्त हुई है और मैं पाण्डव पुत्र अर्जुन हूँ इस अयथार्थ स्मृति का बाध हो गया है। अब मुझे जीवित मृतों का शोक किञ्चितमात्र भी नहीं है। जैसे जाग्रत के अन्त होने पर जब तक स्वप्न नहीं उत्पन्न हुआ तब सन्धि में केवल सच्चिदानन्द आत्मा ही शेष रहता है और फिर उसी कूटस्थ नित्य आत्मा में मन के फुरते ही स्वप्न की सृष्टि भासने लगती है, जिसमें कोई जड़ कोई चेतन, कोई जीवित कोई मृतक अनेक प्रकार के जड़ जङ्गम प्राणी भासते हैं परन्तु वे सब आत्मा ही हैं भिन्न कुछ नहीं उसी प्रकार इस जाग्रत जगत में भी कोई मरता है और कोई पैदा होता है, कोई जड़ है तो कोई चेतन है परन्तु सर्व आत्मा ही है क्योंकि निज स्वरूप आत्मा आप के निर्गुण व्यापक स्वरूप वासुदेव से सदा से अभिन्न है। फिर स्वप्न वत कल्पित नाम रूप के बनने बिगड़ने में हर्ष शोक करना मूर्खता है। जैसे स्वप्न और सुषुप्ति दोनों निद्रा के ही पर्याय हैं उसी प्रकार जगत और ब्रह्म में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोई भेद नहीं ऐसा जानकर आपकी कृपासे मैं शोक रहित हो गया हूँ।

अब प्रलय काल का पवन भी चले और सर्व समुद्र उछलने लगें और नाना प्रकार के क्षोभ होने लगें तो भी मेरा मन आत्मस्वरूप से चलायमान नहीं हो सकता और त्रिलोकी का राज्य मिलने पर भी हर्ष को प्राप्त नहीं हो सकता। जैसे प्रातिभासिक सत्ता रूप स्वप्न में हानि लाभ होने से व्यावहारिक सत्ता रूप जाग्रत में कोई हानि लाभ नहीं हो सकता उसी प्रकार व्यावहारिक सत्ता स्वरूप जाग्रत में हानि लाभ होने से पारमार्थिक सत्ता स्वरूप निज आत्मा से अभिन्न आप के व्यापक परमधाम में कोई हानि लाभ नहीं हो सकता। अतः अब मैं आप के प्रसाद से परम विश्रान्ति को प्राप्त हुआ हूँ। जो कुछ सुनने योग्य था वह भली प्रकार सुन चुका हूँ, अब मुझे कुछ सुनना और जानना शेष नहीं रहा क्योंकि कर्तृत्व अभिमान का अत्यन्ताभाव निश्चय हो गया है। जैसे बादलों के चलने से चन्द्रमा चलता भासता है चलता नहीं अथवा जैसे छाया की क्रियाओं से ठूंठ क्रियावान नहीं हो जाता ज्यों का त्यों अचल एकरस रहता है उसी प्रकार शरीर मन इन्द्रियों की क्रियाओं से आत्मा सक्रिय नहीं हो जाता ज्यों का त्यों सर्वदा अकर्ता असंग एकरस रहता है। जैसे जल हिलने से चन्द्रमा का प्रतिविम्ब उस हिलते हुए जल में हिलता हुआ भासता है उसी प्रकार अन्तःकरण के धर्म कर्तृत्व भोक्तृत्व व प्राणों के धर्म भूख प्यास व इन्द्रियों के धर्म श्रवण दर्शनादि तथा शरीर के धर्म जन्म मरणादि चिदाभास में केवल प्रतीत होते हैं चिद् स्वरूप साक्षी स्वयं प्रकाश आत्मा में प्रतीत भी नहीं होते। अतः हे भगवन! मैं आप के प्रसाद से नव द्वार वाले इस शरीर की जीवित अवस्था में भी घट में आकाशकी भाँति असंग रूपसे इसमें स्थित हूँ और न कुछ करता हूँ न कुछ कराता हूँ अर्थात उदासीनवत उसी प्रकार आसीन हूँ जैसे ठूंठपुरुष में ठूंठ उदासीन वत स्थित रहता है। हे सन्देह रूपी संशयके नाशकर्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूर्य ! मैं आपकी कृपासे कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्म देखने लगा हूँ और आपमें रज्जुसर्पवत समस्त स्थूल सूक्ष्मकारण प्रपंचकी प्रतीति होने पर भी निज आत्मा से अभिन्न आप के निर्गुण स्वरूप सर्वाधिष्ठान व्यापक ब्रह्म में प्रपंच का अत्यन्ताभाव देखता हूँ। अतः अब राज्य भोगने से या त्याग से मुझे कुछ सुख दुख नहीं और इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में मुझ को कुछ हर्ष शोक नहीं। जैसे बीज का विस्तार वृत्त और जल का विस्तार तरंगें हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम संसार आप से अभिन्न मुझ सच्चिदानन्द आत्मा का ही विस्तार है। बीज और जल को परिणाम को प्राप्त होना पड़ता है परन्तु आप के अच्युत स्वरूप ब्रह्म से अभिन्न मुझ कूटस्थ निर्विकार एकरस सर्वाधिष्ठान आत्मा को जगत रूप में परणित नहीं होना पड़ता जैसे रज्जु को सर्प रूप में परिणत होना नहीं पड़ता। अतः अब मुझे समस्त अध्यस्त देहों के नाश का कोई भय नहीं रहा। अब चाहे सम्पूर्ण त्रिलोकी की हिंसा करना पड़े तब भी आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व भ्रान्ति नहीं हो सकती। जैसे चुम्बक पत्थर की शक्ति प्राप्त करके लोहे में दिन रात क्रिया होती रहे परन्तु चुम्बक पत्थर का पर्वत निष्क्रिय रहता है उसी प्रकार चुम्बक के पर्वत के समान मेरा शुद्ध स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा सदा निष्क्रिय रहता है। चूंकि शरीर मन इन्द्रिय प्राण भी लोहे की भाँति चुम्बक पत्थर रूपी मुझ स्वयं प्रकाश सर्व प्रकाशक आत्मा से सत्ता स्फूर्ति पाकर सर्व प्रकार की क्रियाओं को करने में समर्थ होते हैं स्वतः नहीं अतः अन्तः करणादि भी स्वतंत्र कर्ता नहीं हैं। हे अच्युत ! आप के उपदेश से मैंने अहंकार को अविद्या जनित भ्रममात्र निश्चय कर लिया है और समस्त देह दृश्य को मृगजल वत आदि अन्त में आत्मा से भिन्न असत देख लिया है। इस कारण मध्य में भी देह दृश्य के प्रति मेरी असत भावना हो गई है। अब सत्व गुण के कार्य सुख, रजोगुण के कार्य दुख तथा तमोगुण के कार्य मोह से भी मैं अपने परमार्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूप कूटस्थ नित्य निर्विकार आत्मा को उसी प्रकार से असंग देखने लगा हूँ जैसे दिन रात्रि और सन्ध्या से अथवा नीलमा से आकाश असंग होता है। अतः मैं आप के प्रसाद से कृतार्थ हो गया हूँ। हे अच्युत! अब मैं आप की आज्ञा से आप के समान निष्कर्तव्य होने पर भी लोक संग्रह के लिये लीला मात्र व्यावहारिक दृष्टि से प्रारब्ध पर्यन्त क्षत्री धर्म का पालन करूँगा और कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखूंगा अर्थात आत्मा को सदा परमार्थ सत्ता वाला अकर्ता तथा देहों को सदा व्यावहारिक सत्ता वाला सक्रिय निश्चय करूँगा तथा परमार्थ सत्ता शून्य समझूंगा। हे वासुदेव! मैं आप के अनुग्रह से आप के व्यापक सच्चिदानन्द निर्गुण स्वरूप को अपना स्वरूप जानकर आश्चर्य में डूब रहा हूँ, और पुनः पुनः हर्ष को प्राप्त हो रहा हूँ। अतः हे सर्वाधिष्ठान सनातन पुरुष! आप को सर्व ओरसे असंख्य वार मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचारसागर प्रश्नोत्तरी

शिष्य निश्चल दास जी से उनके गुरु दादू जी ने पूछा कि तुम कौन हो ?

शिष्य का उत्तर :—

दो० १—जा विभु सत्त्य प्रकाशते, परकाशत रवि चन्द ।
सो साक्षी मैं बुद्धि को, शुद्ध रूप आनन्द ॥

दो० २—अस्ति भाति प्रिय सिन्धु में नाम रूप जंजाल ।
मति न लखै जेहि मति लखै सो मैं दीन दयाल ॥

अर्थात् जैसे स्वप्न के सूर्य चन्द्र को स्वप्न का साक्षी आत्मा प्रकाश करता है उसी प्रकार जो जाग्रत के सूर्य चन्द्र का प्रकाशक सर्व बुद्धियों का साक्षी शुद्ध बुद्ध आनन्द रूप ब्रह्म है वही मैं हूँ। जैसे जल का वास्तविक स्वरूप शीतलता मधुरता और द्रवता है और कल्पित स्वरूप तरंग बुद्बुदा हैं उसी प्रकार मेरा परमार्थ स्वरूप अस्ति भाति प्रिय अर्थात् सत् चित् आनन्द ब्रह्म है और कल्पित अध्यस्त स्वरूप नाम रूप दृश्य है। मल विक्षेप आवरण युक्त मलिन बुद्धि से मेरे स्वरूप का ज्ञान नहीं होसकता जैसे मलिन दर्पण में मुख का प्रतिविम्ब नहीं पड़ सकता। परन्तु मल विक्षेप आवरण से रहित शुद्ध बुद्धि से मेरे स्वरूप का ज्ञान हो सकता है अर्थात् जो फल व्याप्ति से नहीं जाना जा सकता केवल वृत्ति प्राप्ति से जाना जा सकता है। वृत्ति व्याप्ति से अर्थात् जब बुद्धि की वृत्ति वस्तु के आकार से आकारित होती है तब आवरण भंग होता है और फल व्याप्ति से अर्थात् चिदाभास से वस्तु का प्रकाश (ज्ञान) होता है। चूंकि आत्मा स्वयं प्रकाश साक्षात (स्वतः) अपरोक्ष निज स्वरूप है अतः केवल वृत्ति व्याप्ति चाहिये फल व्याप्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं चाहिये क्योंकि फल व्याप्ति दृश्य के ज्ञान में आवश्यक है। अपने स्वरूप के जानने के लिये केवल वृत्ति द्वारा भ्रान्ति को हटाना पड़ता है जैसे करण को अपने को कुन्ती पुत्र जानने में केवल दासी पुत्र का विपरीत ज्ञान दूर करना पड़ा था कुन्ती पुत्र तो वह स्वयं था। अपने से भिन्न माता कुन्ती को जानने के लिये वृत्ति व्याप्ति और फल व्याप्ति दोनों से काम लेना पड़ा। आँख को रूप देखने के लिए वृत्ति व्याप्ति और फल व्याप्ति दोनों चाहिये परन्तु आँख को आँख देखने के लिये फल व्याप्ति की आवश्यकता नहीं। वृत्ति व्याप्ति भी अज्ञान संशय भ्रम दूर करने के लिये चाहिये। चूंकि जीव के वाच्यार्थ में अज्ञान संशय भ्रम हैं जिसको दूर करने के लिए ब्रह्माकार वृत्ति की आवश्यकता है और जीव के लक्ष्यार्थ कूटस्थ अधिष्ठानांश में अज्ञान संशय भ्रम हैं नहीं अतः साक्षात अपरोक्ष महाकाशवत ब्रह्म को साक्षात्कार करने के लिये घटाकाश वत कूटस्थ को वृत्ति व्याप्ति भी आवश्यक नहीं। साभास अन्तः करण को कल्पित दृश्य के साक्षात्कार के लिये वृत्ति व्याप्ति और फल व्याप्ति दोनों चाहिये और अधिष्ठान बिम्ब चेतनको जाननेके लिए केवल वृत्ति व्याप्ति चाहिये क्योंकि वह सामान्य चेतन अपने से भिन्न दृश्य अनात्मा नहीं है। अतः जो वृत्ति व्याप्ति से जाना जाता है फल व्याप्ति से नहीं, जिसको बुद्धि प्रकाश नहीं करसकती जैसे स्वप्नके नेत्र जाग्रतके रूप को प्रकाश नहीं कर सकते और जो बुद्धिका प्रकाशक साक्षी है, हे दीनों को अर्थात् मुमुक्षु जनों को दया करके भवसागर से पार करने वाले गुरदेव भगवान! वही मेरा वास्तविक स्वरूप है।

गुरु का प्रश्न :—मेरा स्वरूप क्या है और मेरे स्वरूप में तथा तुम्हारे स्वरूप में क्या अन्तर है ?

शिष्य का उत्तर :—

दो०—दादू दीन दयाल जू, सत सुख परम प्रकाश।
जामें मति की गति नहीं, सोई निश्चल दास॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे गुरुदेव आप का स्वरूप दीन दयाल है अर्थात् आप मुमुक्षु जनों को जन्म मरण रूप बन्धन से मुक्त करने वाले हैं। आप का परमाथ स्वरूप देश काल वस्तु के अन्त से रहित होने से सत है और सुख रूर भी है क्योंकि व्यापक सत ही सुख रूप हो सकता है परिच्छिन्न तो अनित्य दुख रूप होता है। जैसे गुड़ सब चावलों को मीठा करता है और गुड़को कोई मीठा नहीं करता वह स्वतः मीठा होता है उसीप्रकार हे भगवन ! आपका स्वरूप सूर्य चन्द्रादि सर्वका प्रकाशक है और आप का प्रकाशक कोई नहीं है क्योंकि आप स्वयं प्रकाश हैं। आपका स्वयं प्रकाश पारमार्थिकस्वरूप प्रातिभासिक और व्यावहारिक बुद्धियोंके पहुँच के बाहर है और वही मेरा भी स्वरूप है। जैसे स्वप्न में गुरूका स्वरूप स्वप्न साक्षी है और शिष्यका भी स्वरूप स्वप्नसाक्षी है क्योंकि स्वप्नमें साक्षी आत्माही विवर्तरूपसे सर्वरूप होजाता है उसीप्रकार यहाँ जाग्रत में भी साक्षी ब्रह्म ही विवर्तरूपसे गुरु शिष्य आदि सर्वरूपोंमें हो गया है। अतः जा आप का स्वरूप है वही मेरा स्वरूप है। हनूमान जी ने भी भगवान राम से यही कहा कि मैं देह की दृष्टि से आप का दास हूँ अर्थात् मेरा देह आप का दास है और जीव (चिदाभास) दृष्टि से मैं आप का अन्श हूँ अर्थात् चिदाभास आप का अन्श है क्योंकि प्रतिविम्ब विम्ब का ही अन्श होता है और आत्मदृष्टि से मैं वही हूँ जो आप हैं। अर्थात् मेरा वास्तविक परमार्थस्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म है जो आप का भी परमार्थस्वरूप है। निश्चल दासजी का भी यह अभिप्राय है कि हे गुरुदेव ! आपके और मेरे स्वरूप में कुछ भी भेद नहीं जो आप हैं वही मैं हूँ।

दो०—नाम रूप व्यभिचारि मैं, अनुगत एक अनूप।
दादू पद को लक्ष्य है, अस्तिभाति प्रिय रूप ॥

अर्थात् जैसे भूषणों में नाम रूप का व्यभिचार है और सोना व्यापक है इसी प्रकार भूषणोंवत नाम रूपात्मक इस संसार में परस्पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाम रूप का व्यभिचार है और मेरा सत् चित् आनन्द ब्रह्म स्वरूप स्वर्णवत व्यापक है। हे गुरुदेव वही सच्चिदानन्द व्यापक स्वरूप आप का भी लक्ष्यार्थ है। अतः मेरे और आप के स्वरूप में कोई भेद नहीं।

श्री निश्चलदास द्वारा वर्णन किया हुआ राजा शुभसंतति के पुत्रों तत्वदृष्टि, अदृष्टि और तर्क दृष्टि का उनके गुरुसे सम्वाद।

तीनों पुत्रों ने राज्य त्याग करके श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के निकट छे मास निवास किया और तनमन धन गुरू को अर्पण करके शिष्य भाव से सेवा की और उनके हृदय में केवल मोक्ष की कामना थी अन्य किसी पदार्थ की कामना न थी।

दो०—कियो वास षटमास पुनि, शिष्य रीति अनुसार।
करी अधिक गुरु सेव तिहुँ, मोक्ष काम हिय धार॥

जैसे राजरोग से पीड़ित रोगी को वैद्य डाक्टर की सेवा राज रोग छुड़ाने के लिए और स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए करना चाहिये, धन पुत्र स्वर्गादि प्राप्ति के लिए नहीं उसी प्रकार सद्गुरु की सेवा जन्म मरण रूपी राजरोग छुड़ाने के लिये और परमानन्द ब्रह्म की प्राप्ति के लिये करना चाहिये भोगों की प्राप्ति के लिये नहीं। गुरु की आज्ञा पाकर तत्व दृष्टि का प्रश्न १:—

भो भगवन तुम कृपा निधाना। हो सर्वज्ञ महेश समाना॥
आप उपाय कहौ गुरु देवा। है जाते भव दुःख को छेवा॥
पुनि चाहत हम परमानन्दा। ताको कहो उपाय सुछन्दा॥

गुरु का उत्तर :—

दो०—परमानन्द स्वरूप तूं, नहिं तामैं दुःख लेश।
अज अविनाशी ब्रह्म चित, जिन आनै हिय क्लेश॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् जैसे कोई राजा निद्रा आने पर अपने को स्वप्न की जेल में कैद देखे और दीन होकर स्वप्न जेल से छूटने की इच्छा करे और राजा बनना चाहे तो उसकी यह भूल है क्योंकि जाग्रत अवस्था में स्वप्न जेल का अत्यन्ताभाव है। उसको निद्रा वश स्वप्न की जेल की भ्रान्ति हो रही है। वास्तव में वह कहीं आया गया नहीं तथा स्वयं बना वनाया राजा है। उसी प्रकार हे शिष्य! तू परमानन्द रूप अज अविनाशी ब्रह्म है जन्म मरण रूप दुःखों का तुझ में अत्यन्ता भाव है। तू नित्त्य प्राप्त की प्राप्ति और नित्य निवृत्त की निवृत्ति अज्ञान वश चाहता है। **तत्व दृष्टि का प्रश्न २ :**—यदि मेरे अन्दर आनन्द है तो विषयों में आनन्द की अनुभूति क्यों हो रही है।

गुरु का उत्तर :—जैसे मुख अपनी ग्रीवा में स्थित होता है परन्तु उसका प्रतिविम्ब दर्पण में दिखाई पड़ता है उसी प्रकार आनन्द स्वरूप स्वयं आत्मा है परन्तु उसका प्रतिविम्ब विषयों में दिखाई पड़ता है। जब अनुकूल विषयों की प्राप्ति होती है तो कुछ देर के लिए मन एकाग्र हो जाता है जिसमें परमानन्द स्वरूप आत्मा का प्रतिविम्ब पड़ने लगता है परन्तु अज्ञानी अपनी आत्मा का प्रतिविम्ब न जानकर कस्तूरी वाले मृग की भाँति विषयों का आनन्द मानकर विषयों में आसक्त हो जाता है और ज्ञानी विषयानन्द को परमानन्द स्वरूप आत्मा का प्रतिबिम्ब मानकर अपनी आत्मा में ही रति करता है विषयों में आसक्त नहीं होता।

तत्त्वदृष्टि का प्रश्न ३ :—यदि बन्ध रूप संसार मुझ में नहीं है तो किसमें है? **गुरु का उत्तर :**—

दो०—सुनहु शिष्य मम बानि, जाते तव शंका मिटै।
है जग की अति हानि, तो मो में नहिं और में॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् संसार का अत्यन्तभाव है, न तुझ में है न मुझ में है न अन्यत्र है। तत्व दृष्टि का प्रश्न ४ :—

दो०—जो भगवन है कहुँ नहीं, जन्म मरण जग खेद।
ह्वै प्रत्यक्ष प्रतीत क्यों, कहो आप यह भेद॥

अर्थात् जब परमानन्द स्वरूप मुझ आत्मा में जन्म मरण रूप संसार नहीं है तो प्रत्यक्ष प्रतीत क्यों हो रहा है।

गुरु का उत्तर :—दो०—आत्म रूप अज्ञान ते, ह्वै मिथ्या परतीत।
जगत स्वप्न नभ नीलता, रज्जु भुजग की रीति॥

अर्थात् जैसे जाग्रत शरीर के अज्ञान से मिथ्या स्वप्न की प्रतीति होती है तथा रूप के अग्रहण से आकाश में नीलमा की प्रतीति होती है और रस्सी के अज्ञान से सर्प की प्रतीति होती है उसी प्रकार निज स्वरूप परमानन्द ब्रह्म रूप आत्मा के अज्ञान से रज्जुसर्पवत मिथ्या जाग्रत जगत की प्रतीति होती है।

तत्व दृष्टि का प्रश्न ५ :—हे गुरुदेव आप ने रज्जु में सर्प की भाँति आत्मा में संसार की प्रतीति बतलाई है अतः कृपा करके बतलाइये कि रज्जु में सर्प कैसे प्रतीत होता है उसी प्रकार से संसार की भी प्रतीति आत्मा में समझ लूँगा।

गुरु का उत्तर :—रज्जु में सर्प की प्रतीति के दो मुख्य कारण हैं। पहला कारण रज्जु के सामान्य रूप का ज्ञान और विशेष रूप का अज्ञान और दूसरा कारण पूर्व देखे हुए सर्प के ज्ञान जन्य संसकार। यदि कहो रस्सी में सर्प सच्चा नहीं अन्यत्र तो सर्प सच्चा है उसी प्रकार आत्मा में जगत सच्चा नहीं परन्तु अन्यत्र तो जगत सत्य होना चाहिये उसका समाधान यह है कि कल्पित वस्तु के ज्ञान जन्य संसकार से भी अध्यास बन सकता है जैसे बाजीगर का दिखाया हुआ कल्पित सर्प देखकर अथवा सर्प की कागज या कपड़े पर तस्वीर देखकर या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रबड़ का बना हुआ कल्पित सर्प देखकर संसकार बन सकते हैं और उस कल्पित सर्प के ज्ञान जन्य संसकार से रज्जु में सर्प का अध्यास हो सकता है, अतः संसार कहीं सत्त्य नहीं है। पूर्व पूर्व कल्पित संसार के ज्ञान जन्य संसकार उत्तर उत्तर कल्पित संसार के हेतु हैं। बीज अङ्कुरवत संसार का प्रवाह अनादि है अतः सबसे पहला संसार कोई नहीं। जल में तरंगोंवत संसार अर्थात जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति प्रवाह रूप से अनादि हैं और जीव ईश्वर, माया, ब्रह्म, भेद और सम्बन्ध स्वरूप से अनादि हैं जिनमें परमार्थ ब्रह्म अनादि अनन्त है और शेष कल्पित अनादि सान्त हैं। जीव ईश्वर का भेद सौपाधिक है स्वरूपतः भेद नहीं। अतः संसार को रज्जु सप की भाँति अन्यत्र सत्त्य नहीं मानना चाहिये। चूँकि रज्जु परिच्छिन्न है इससे सर्प अन्यत्र सत्त्य सिद्ध हो सकता है परन्तु आत्मा व्यापक है फिर आत्मा से अन्यत्र संसार को कहाँ माना जाय। अतः संसार आत्मा का विवर्त है जो स्वरूप के सामान्य ज्ञान और विशेष रूप के अज्ञान से तथा कल्पित दृश्य के ज्ञान जन्य संसकार से प्रतीत होता है। अब यदि कहो कि प्रमेय रज्जु में सादृश्यता दोष है तथा प्रमाण नेत्र में मन्द दृष्टि आदि दोष हैं तथा प्रमाता में भय आदि दोष हैं तब रज्जु में सर्प आदि का अध्यास बन सकता है परन्तु अध्यास के पूर्व प्रमाता अन्तःकरण और प्रमाण नेत्र का अत्यन्ताभाव है और आत्मा तथा संसार में सादृश्य भी नहीं है फिर आत्मा में संसार का अध्यास कैसे हो सकता है। उसका समाधान यह है कि सर्वत्र यह नियम नहीं है कि प्रमाता, प्रमाण तथा प्रमेय दोषों के बिना अध्यास बनना असम्भव है। जैसे आकाश में नीलमा का अध्यास प्रमाता प्रमाण प्रमेय दोषों के बिना ही प्रतीत होता है उसी प्रकार आत्मा में संसार का अध्यास प्रमाता प्रमाण प्रमेय दोषों के बिना ही प्रतीत होता है। यदि कहो कि रस्सी के सामान्य रूप के ज्ञान से और विशेष रूप के अज्ञान से सर्प

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की प्रतीति होती है परन्तु आत्मा स्वयं प्रकाश है तथा सामान्य विशेष भाव से रहित है। उसका समाधान यह है कि मैं हूँ ऐसा सामान्य ज्ञान सर्व के अनुभव से सिद्ध है और मैं असंग अखंड परमानन्द रूप ब्रह्म हूँ ऐसे विसेष ज्ञान का अभाव है यह भी सर्व के अनुभव से सिद्ध है। फिर अनुभव सिद्ध सिद्धान्त में तर्क करना व्यर्थ है। यद्यपि सामान्य रूप का ज्ञान तथा विशेष रूप का अज्ञान भी व्यावहारिक चेतन को है पारमार्थिक चेतन को नहीं अर्थात व्यावहारिक प्रातिभासिक चेतन अज्ञान के अभिमानी हैं और पारमार्थिक चेतन अधिष्ठान है। अतः सिद्ध हुआ कि जब रज्जु के सामान्य रूप का ज्ञान और विशेष रूप का अज्ञान होता है और पूर्व देखे हुए सर्प के ज्ञान जन्य संसकार उदय होते हैं तब वृत्ति उपहित चेतन निज स्वरूप की विस्मृति रूप अविद्या में क्षोभ होता है और उसके तमोगुण का परिणाम रूप और सत्वगुण का परिणाम ज्ञान स्वप्नवत अनिर्वचनीय उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार अपने निज स्वरूप के विशेष रूप के अज्ञान से और सामान्य रूप सदंश के ज्ञान से तथा पूर्व काल में अनुभव किये हुए कल्पित दृश्य के संसकारों के उदय होनेपर अविद्या में क्षोभ होता है तव स्वप्न और रज्जुसर्पवत अविद्या के तमोगुण का परिणाम जाग्रत दृश्य का आकार तथा सत्वगुण का परिणाम ज्ञान अनिर्वचनीय प्रतीत होने लगता है जो अविद्या का परिणांम और चेतन का विवर्त है जिसको अनिर्वचनीय ख्याति कहते हैं।

यथार्थ ज्ञान से संसार का अध्यास निवृत्त हो जाता है इस कारण संसार को सत नहीं कह सकते हैं। अधिष्ठान आत्मा में संसार का परमार्थ दृष्टि से अत्यन्ताभाव है परन्तु अज्ञान पर्यन्त रज्जु सर्प व स्वप्न की भाँति भ्रममात्र दृश्य प्रतीत होता है इससे असत से भी विलक्षण है क्योंकि असत उसको कहते हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसका अत्यन्ताभाव हो और प्रतीत भी न होता हो। अतः सत और असत दोनों से विलक्षण होने से चेतन के विवर्त और अविद्या के परिणाम तथा ज्ञान से निवर्त्य इस दृश्य को अनिर्वचनीय कहते हैं।

तत्त्व दृष्टि का प्रश्न ६ :— जैसे रज्जुसर्प का आधार रज्जु का सामान्य रूप है और अधिष्ठान विशेष रूप है उसी प्रकार से इस जगत का आधार और अधिष्ठान कौन है।

गुरु का उत्तर :— जैसे रज्जु का सामान्य रूप सर्प का आधार है उसी प्रकार ऐ शिष्य ! तेरी आत्मा का सामान्य रूप सदन्श (मैं हूँ) जगत का आधार है क्योंकि परमानन्द स्वरूप ब्रह्म रूप आत्मा में जब अहं का स्पन्द होता है तभी व्यावहारिक सत्ता जाग्रत और प्रातिभासिक सत्ता स्वप्न की रज्जु सर्प वत प्रतीति होती है। जैसे सर्प का अधिष्ठान रज्जु का विशेष रूप है उसी प्रकार अध्यस्त संसार का अधिष्ठान तेरे निज स्वरूप आत्मा का विशेष रूप असंग व्यापक निर्द्वैत परमानन्द घन ब्रह्म है। अधिष्ठान उसको कहते हैं जिसके अज्ञान से अध्यस्त की प्रतीति हो और ज्ञान से अध्यस्त का अत्यन्ताभाव निश्चय हो जाय। तथा आधार उसको कहते हैं जिसके ज्ञान से अध्यस्त की प्रतीति हो और अज्ञान से अध्यस्त की अविद्या में लय रूप निवृत्ति हो जाय। जैसे रज्जु के अज्ञान से सर्प की प्रतीति होती है और रज्जु के ज्ञान से सर्प की निवृत्ति हो जाती है अतः रज्जु को सर्प का अधिष्ठान समझना चाहिये और रज्जु के सामान्य रूप इदं अन्श को आधार समझना चाहिये क्योंकि इदं अन्श के ज्ञान से सर्प की प्रतीति होती है और इदं अन्श का भी अज्ञान होने पर सर्प की अज्ञान में लय रूप निवृत्ति हो जाती है जिसकी प्रतीति इदं अन्श के ज्ञान होने पर पुनः होने लगती है। अतः जैसे सर्प का अधिष्ठान तथा आधार रस्सी है। उसी प्रकार जगत का अधिष्ठान और आधार तू ही है दूसरा नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो०—तव निज स्वरूप अज्ञान ते, ह्वै मिथ्या जग भान।
अधिष्ठान आधार तू, रज्जु भुजंग समान ॥

तत्व दृष्टि का प्रश्न ७ :—जैसे सर्प का आधार व अधिष्ठान रस्सी है उसी प्रकार संसार भ्रम का आधार अधिष्ठान मैं ही हूँ। परन्तु जैसे सर्पका दृष्टा रस्सी नहीं है अन्य है केवलउसी प्रकार रज्जु सर्प वत संसार का दृष्टा कौन है। मैं तो संसार का केवल आधार अधिष्ठान हूँ।

गुरुका उत्तर:—अधिष्ठान जड़ वस्तु जहाँ है, दृष्टा ताते भिन्न तहाँ है।
जहाँ होय चेतन आधारा। तहाँ न दृष्टा होवे न्यारा ॥

दो०—चेतन मिथ्या स्वप्न को, अधिष्ठान निर्धार।
सोई दृष्टा भिन्न नहिं, तैसे जगत विचार ॥

अर्थात जहाँ जड़ अधिष्ठान होता है वहाँ दृष्टा अधिष्ठान से प्रथक अन्य होता है। परन्तु जहाँ चेतन अधिष्ठान होता है वहाँ वही दृष्टा भी आभास रूप से बनता है। जैसे स्वप्न का अधिष्ठान स्वप्न साची आत्मा है और वही दृष्टा भी है, उस से प्रथन कोई दृष्टा नहीं। अतः तू ही दृष्टा है और अधिष्ठान आधार भी है।

दो०—सत चित आनंद एक तू—ब्रह्म अजन्य असंग।
विभु चेतन माया करे—जग को उत्पति भंग ॥

दीनता कू त्यागि नर आपनो स्वरूप देखि।
तू तो शुद्ध ब्रह्म अज दृश्य को प्रकाशी है।
आपने अज्ञान ते जगत सब तू ही रचै।
सर्व को संहार करे आप अविनाशी है।
मिथ्या प्रपंच देख दुःख जिन आनिजिय।
देवन को देव तू तो सब सुखरांशी है।
जीव जग ईश होय माया के प्रभा से तू ही।
जसे रज्जु सांप सीप रूप ह्वै प्रभासी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक अखंडित ब्रह्म असंग, अजन्य अदृश्य अरूप अनामय
मूल अज्ञान न सूक्ष्म स्थूल, समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामें।
ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ न, तैजस विश्व स्वरूप न जामें।
भोग न जोग न बन्ध न मोक्ष नहिं कछु वामें अरु है सब वामें।
जाग्रत में जो प्रपंच प्रभासत सो सब बुद्धि विलास बन्यो है।
ज्यों सपने में भोग्य न भोग तहूँ इक चित्र विचित्र जन्यो है।
लीन सुषूपति में मति होतहि भेद भगै इक रूप सुन्यो है।
बुद्धि रच्यो जो मनोरथ मात्र सो निश्चल बुद्धि प्रकाश भन्यो है।

तत्व दृष्टि का प्रश्न ८ :—हे गुरु देव! मैंने आप के उपदेश से जाना कि संसार स्वप्न के समान मिथ्या है परन्तु जिस को भ्यानक स्वप्न आते हैं वह भ्यानक स्वप्न से छूटने के लिये मिथ्या होने पर भी अनेक उपाय करता है। अतः इस दीर्घ स्वप्न से भी छूटने का उपाय बतलाइये।

गुरु का उत्तर : – हे शिष्य इसी प्रश्न का समाधान भगवान कृष्ण ने भी गीता के अध्याय दो श्लोक १४, १६ में किया है कि हे अर्जुन शरीर की प्रारब्ध पर्यन्त सुख दुःख अवश्य आते रहेंगे क्योंकि ज्ञान प्रारब्ध का विरोधी नहीं है। अतः तुम अपने को नित्य एकरस निर्विकार असंग अतमा जान कर और देह तथा देह के धर्म सुख दुःखादि को मृगजल व स्वप्नवत मिथ्या जानकर सर्व द्वन्द्वों को सहन करो अर्थात सुख दुःखादि को अध्यस्त और अपने को अधिष्ठान जानकर उनसे अपनां कोई हानिमत मानों क्योंकि "मिथ्या अधिष्ठान न विगारै स्वप्न भीख न दरिद्री भूप"। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने भी ऐसा ही प्रश्न योग वाशिष्ठ के अन्त में किया है जिसका उत्तर वशिष्ठ जी ने भी यही दिया है कि हे राम यदि किसी को भयानक स्वप्न आवे और उसके संम्बन्धी जल में डूब जायें तथा उसका घर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्नि से नष्ट हो जाये और उसके हाथ पैर और मस्तक कोई डाकू तलवार से काट डाले परन्तु यह बताओ जाग्रत में कौन डूबा, क्या जला और तलवार से कौन कटा ? अर्थात् जैसें जाग्रतमें स्वप्न प्रपंचका अत्यन्ताभाव है उसी प्रकार महाजाग्रत रूप तुम्हारा निज स्वरूप आत्मा प्रपंच से शून्य है। अतः स्वप्न के दुःखों से भय मत करो।

दो०—निज आतम अज्ञान ते, ह्वै प्रतीत जग खेद।
नशै सो ताके बोधते, यह भाषत मुनि वेद॥
कर्म उपासन ते नहीं, जग निदान तम नाश।
अन्धकार जिम गेह में, नशै न विन परकाश॥

अर्थात निज स्वरूप अधिष्ठान ब्रह्म के अज्ञान से इस दीर्घ स्वप्न की प्रतीत हो रही है। अतः ब्रह्मज्ञान ही इसकी निवृत्ति का एकमात्र उपाय है तथा कर्म उपासना अन्तःकरण शुद्धि के लिये हैं। मोक्ष तो शुद्ध अन्तःकरण में जब ज्ञान होगा तभी होगा, ज्ञान के पहले मोक्ष असम्भव है जैसे प्रकाश के बिना अन्धकार का नाश असम्भव है। जैसे तेल रुई, और दीपक मात्र से बिना प्रकाश प्रकट किये हुए अन्धकार दूर नहीं हो सकता उसी प्रकार ज्ञान रूप प्रकाश के प्रकट हुए बिना केवल कर्म उपासना से अज्ञान तथा अज्ञान जनीत प्रपंच का अत्यन्ताभाव नहीं हो सकता। अतः इस स्वप्न प्रपंच से छूटने का उपाय ज्ञान ही है जिसको बतला भी चुका हूँ उसी को फिर से सुनो।

दो०—जगमों में नहिं, 'ब्रह्म मैं' 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान।
सो तो कूँ शिष मैं कह्यो, नहिं उपाय कोउ आन॥

तत्त्व दृष्टि का प्रश्न ९ :—हे गुरुदेव ! मैं पुण्य पाप का कर्ता और जन्म मरण सुख दुःख का भोक्ता हूँ और ब्रह्म असंग साक्षी व्यापक है। उपनिषदों में भी ऐसा ही लिखा है कि बुद्धि रूपी वृक्ष में दो पक्षी रहते हैं जिनमें जीव रूपी पक्षी भोक्ता है और ब्रह्म रूपी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत्ती असंग साक्षी है फिर जीव ब्रह्म में अभेद कैसे हो सकता है।

गुरु का उत्तर :—ऐ शिष्य ! जीव ब्रह्म का स्वरूपतः भेद नहीं है कल्पित उपाधि कृत भेद है। जैसे जल उपहित आकाश का और जल प्रतिबिम्बित आकाश का जल उपाधि के कारण भेद प्रतीत होता है जल के बिना भेद सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे जल प्रतिबिम्बित आकाश से जल उपहित आकाश भिन्न नहीं उसी का वास्तविक स्वरूप है उसी प्रकार बुद्धि में प्रतिबिम्ब चेतन से बुद्धि उपाहित चेतन कूटस्थ भिन्न नहीं है। अतः चिदाभास रूप से कर्ता भोक्ता और कूटस्थ रूप से साक्षी असंग एक ही चेतन दो पक्षियों के रूप में बुद्धि रूपी वृक्ष पर बतलाया गया है। एक ही चेतन साभास बुद्धि से युक्त होकर जीव और साभास माया से युक्त होकर ईश्वर कहलाता है तथा उपाधियों के बिना शुद्ध अद्वैत ब्रह्म है।

दो०—काम कर्म युत बुद्धि में, जो चेतन प्रतिबिम्ब।
जीव कहे विद्वान तेहि, जल नभ तुल्य सबिम्ब ॥
बुद्धि माँहि आभास जो, पुण्य पाप फल भोग।
गमन आगमन सो करै, नहिं चेतन में जोग ॥
चित छाया माया विषै, अधिष्ठान संयुक्त।
मेघ व्योम सम ईश सो, अन्तर्यामी मुक्त ॥
कर्मी छाया देत फल, नहिं चेतन में जोग।
सो असंग इक रूप है, जानै भिन्न कु लोग ॥
मलिन सत्व अज्ञान में, जो चेतन आभास।
अधिष्ठान युत जीव सो, करत कर्म फल आस ॥
जीव ईश भेद हीन चेतन स्वरूप माँहि।
माया सो अनादि एक सान्त ताहि मानिये।
सत अरु असत ते विलक्षण स्वरूप ताको।
ताही को अविद्या और अज्ञान हू बखानिये ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चेतन सामान्य न विरोधी ताको साधक है।
वृत्ति में आरूढ़ वा विरोधी वृत्ति जानिये॥
माया में आभास, अधिष्ठान अरु माया मिल।
ईश सर्वज्ञ जग हेतु पहिचानिये।
कह्यो भिन्न कर्मी फल दाता। मति माया छाया सो ताता॥
जीव ईश में चेतन रूपं। भेद गन्ध ते रहित अनूपं॥
मति वा व्यष्टि अज्ञान को, अधिष्ठान चैतन्य।
घटाकाश सम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य।
अन्तर बाहर एकरस जो चेतन भरपूर।
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर।
याते 'अहं ब्रह्म' यह जानौ, अहं शब्द कूटस्थ पिछानौ।

क्योंकि जब तक ब्रह्म में आत्म भाव नहीं होगा तब तक जन्म-मरणादि दुःखों का अन्त नहीं होगा।

अहं ब्रह्म नहिं जौ लौं जानै, तौलौं दीन दुखित भय मानै।

हे शिष्य जीव का शुद्ध रूप कूटस्थ कर्ता भोक्ता नहीं ब्रह्म रूप है। साभास बुद्धि कर्ता भोक्ता, उपासक, परिच्छिन्न और नाना है तथा साभास माया सर्वज्ञ फल दाता है।

तत्व दृष्टि का प्रश्न १० :—हे गुरु देव 'अहं ब्रह्म' ऐसा ज्ञान चिदाभास को होता है या कूटस्थ को।

गुरु का उत्तर :—रामचरित मानस में भी लिखा है—

हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥

अर्थात जिस चिदाभास को अज्ञान है और अज्ञान जनित जन्म मरण से हर्ष विषाद को जो प्राप्त होता है उसी चिदाभास को अहं ब्रह्म ऐसा ज्ञान भी होता है। कूटस्थ असंग निर्विकार सहज निर्विकल्प बोध स्वरूप ब्रह्म है जिसके लिए रामचरित मानस में कहा गया है :—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहिं तहँ मोह निशा लव लेशा॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना॥

तत्व दृष्टि का प्रश्न ११ :—हे गुरु देव आप ने चिदाभास को मिथ्या कहा है फिर ब्रह्म कैसे हो सकता है क्योंकि प्रतिबिम्ब को बिम्ब मानना भूल है। प्रतिबिम्ब तो जल के अधीन जल पर्यन्त ही रहता है फिर प्रतिबिम्ब को बिम्ब क्यों माना जाय उसी प्रकार चिदाभास को अहं ब्रह्म ऐसा ज्ञान कैसे होगा।

गुरु का उत्तर :—हे शिष्य यद्यपि अहं ब्रह्म ऐसा ज्ञान चिदाभास को ही होता है परन्तु वह कूटस्थके अभिमानसे अपने को ब्रह्म कहता है क्योंकि कूटस्थ ही उसका परमार्थ स्वरूप है। जैसे तरंग कह सकती है कि नाहं तरंगः सलिलमहं' अर्थात मैं तरंग नहीं जल हूँ क्यों कि तरंग का सच्चा स्वरूप जल ही है उसी प्रकार जीव भी कूटस्थ के अभिमान से अपने को ब्रह्म कह सकता है।

तत्व दृष्टि का प्रश्न १२ :—अहं वृत्ति में साक्षी कूटस्थ और आभास का ज्ञान एक ही समय होता है या क्रम से होता है।

गुरु का उत्तर :—हे शिष्य ! कूटस्थ और आभासका ज्ञान अहं वृत्ति में एक ही समय होता है जैसे जल और नाम रूप उछल कूद का ज्ञान तरंग में एक साथ होता है। अहं वृत्ति को तरंग वत जानो और साक्षी कूटस्थ को जल वत जानों तथा नाम रूप उछल कूद को आभास सहित बुद्धि जानों। जैसे जल आधार रूप से ज्ञात होता है और नाम रूप आधेय रूप से ज्ञात होता है उसी प्रकार कूटस्थ स्वयं प्रकाश साक्षी रूप से ज्ञात होता है और आभास विषय होकर प्रकाश्य रूप से ज्ञात होता है।

तत्व दृष्टि का प्रश्न १३ :—हे गुरुदेव ! प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये इन्द्रियाँ ही प्रमाण हैं फिर इन्द्रियों के बिना अहं ब्रह्म ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरु का उत्तर :—हे शिष्य प्रत्यक्ष ज्ञान भी इन्द्रियों के बिना होता है जैसे इन्द्रियों के बिना ही भूक प्यास सुख दुख का ज्ञान होता है। समाधि और सुषुप्ति का ज्ञान भी इन्द्रियों के बिना ही होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये जिसका ज्ञान करना हो उसमें उसी देश में वृत्ति व्याप्ति चाहिये जो भूक प्यास अन्तर पदार्थों में इन्द्रियों के बिना ही हो जाती है और बाहर के शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध में वृत्ति व्याप्ति इन्द्रियों द्वारा होती है। ब्रह्म में वृत्ति व्याप्ति करने के लिये इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं क्योंकि ब्रह्म व्यापक होने से अन्तः करण के अन्तर भी है। उसके जानने के लिए इन्द्रियाँ प्रमाण नहीं वेदान्त वाक्य प्रमाण हैं जिनको गुरु द्वारा श्रवण करने से शुद्ध अन्तः करण में ब्रह्माकार वृत्ति हो जाती है जो अज्ञान संशय और भ्रम को दूर कर देती है। ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान वेदान्त वाक्य रूप शब्द प्रमाण से ही होता है अन्य अनुमानादिक पाँच प्रमाण मनन में सहायक हैं। कूटस्थ तो सदा से ब्रह्म स्वरूप है जो जीव का वास्तविक स्वरूप है। अतः फल व्याप्ति की आवश्यकता नहीं। अतः हे शिष्य ! इन्द्रियों के बिना ही अहं ब्रह्म ऐसा ज्ञान होता है। महावाक्यों से भी शक्तिवृत्ति द्वारा नहीं भागत्याग लक्षणा द्वारा जीव और ईश्वर की अविद्या तथा माया उपाधियों का त्याग करके दशमपुरुषवत अपरोक्ष ज्ञान होता है।

अदृष्टि का प्रश्न १४ :—हे गुरु देव ! वेद और गुरु मिथ्या हैं या सत्य। यदि मिथ्या हैं तो जैसे मिथ्या मृग जल से प्यास शान्त नहीं होती उसी प्रकार मिथ्या वेद और गुरु से ज्ञान द्वारा मोक्ष नहीं होगा और यदि वेद गुरु सत्य हैं तो द्वैत सिद्ध होगा।

गुरु का उत्तर :—

यद्यपि मिथ्या मरुथल पानी। ताते किनहुँ न प्यास बुझानी ॥
तदपि विषम दृष्टान्त सो तेरो। सत्ता भेद दुहुन में हेरो ॥
सम सत्ता भव दुख गुरु वेदा। यों गुरु वेद करत भव छेदा ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् जैसे स्वप्न में कोई अपने को रोगी या प्यासा देखे तो जाग्रत के वैद्य और पानी से स्वप्न के रोग और प्यास दूर नहीं हो सकते क्योंकि सत्ता में भेद है। स्वप्न की प्रातिभासिक सत्ता है और जाग्रत की व्यावहारिक सत्ता है। मिथ्या स्वप्न का रोग स्वप्न के मिथ्या वैद्य से दूर हो सकता है और स्वप्न की प्यास स्वप्न के मिथ्या जल से अवश्य दूर हो जायेगी। इसी प्रकार मृगजल की प्रातिभासिक सत्ता है और प्यास की व्यावहारिक सत्ता है। इस कारण दोनों की सत्ता प्रथक प्रथक होने से मृगजल से प्यास शान्त नहीं होती। परन्तु जन्म मरण का दुख भी व्यावहारिक सत्ता वाला है और गुरु वेद भी व्यावहारिक सत्ता वाले हैं और दोनों स्वप्न के रोग और वैद्य के समान मिथ्या भी हैं तब भी समसत्ता होने से मिथ्या गुरु वेद से मिथ्या भव दुःख अवश्य नाश हो सकता है।

अदृष्टि का प्रश्न १५ :—हे गुरु देव अज्ञान से उत्पन्न हुआ संसार किस क्रम से उत्पन्न होता है। गुरु का उत्तर :—

जैसे स्वप्न होत विन क्रमते। त्यों मिथ्या जग भासत भ्रमते ॥
जो ताको क्रम जान्यो लौरे। सो मरुथल जल वसन निचोरे ॥

दो०—उपनिषदन में बहुत विधि, जग उत्पत्ति प्रकार।
अभिप्राय तिनको यही, चेतन भिन्न असार।

नाहिं ख पुष्प समान प्रपंच तु, ईश कहां कर्ता जो कहावै।
साक्ष्य नहीं इम साक्षि स्वरूप न, दृश्य नहीं दृक काहि जनावै ॥
बन्धहु होइ तो मोक्ष बनै अरु, होय अज्ञान तो ज्ञान नसावै।
जानि यही करतव्य तजै सब, निश्चल होतहि निश्चल पावै ॥

जाके हिये ज्ञान उजियारो, तम अंधियारो भयो विनाश।
सदा असंग एक रस आतम, ब्रह्म रूप सो स्वयं प्रकाश ॥
ना कछु भयो न है नहिं ह्वै है। जगत मनोरथ मात्र विलास।
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत। है ज्ञानी के कोउ न आस ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखै सुनै न सुनै न देखै, सब रस गहै अरु लेत न स्वाद
सूंघि परसि परसै नहिं सूंघै वैन न बोलै करै विवाद
ग्रहै न ग्रहै, मल तजै न त्यागै, चलै नहीं अरु धावत पाद
भोगै भोग सदा सन्यासी, सिष लखि यह अद्भुत सम्वाद।
निज विषयन में इन्द्रिय वर्तैं, तिनते मेरो नाहीं संग।
मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रिय नहिं मैं साक्षी कूटस्थ असंग।
त्यागहु विषय कि भोगहु इन्द्रिय, मोकूं लगै न रंचक रंग।
यह निश्चय ज्ञानी को याते, कर्ता दीखै करै न अंग।

हे शिष्य ज्ञानी की दृष्टि में रज्ज में सर्प वत संसार भ्रम मात्र है। जैसे रज्जु में प्रतीत होने वाले सर्प का कौन सा सर्प पिता है और कौन सर्पिणी माता है यह खोज करना व्यर्थ है उसी प्रकार अज्ञानसे उत्पन्न संसार का क्रम खोजना व्यर्थ है परन्तु मध्यम अधिकारीके लिये जैसा क्रम ग्रन्थों में वर्णन है वह भी सुनो।

जीवन के पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईश।
इच्छा होय जीव भोग जग उपजाइये।
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचै तहाँ।
शब्द स्पर्श रूप रस गंध गुन गाइये।

सत्व अन्श पंचन को मेलि उपजत सत्व।
रजो गुण अन्श मिलि प्रान त्यों उपाइये।
एक एक भूत सत्व अन्श ज्ञान इन्द्रि रचै।
कर्म इन्द्रि रजो गुन अन्श ते लखाइये॥

भूत अपंची कृत औ कारज, इतनी सूक्ष्म सृष्टि पिछान।
पंचीकृत भूतन ते उपज्यो स्थूल पसारो सारो मान।
कारन सूक्ष्म स्थूल देह अरु पंचकोश इन्हीं में जान।
करि विवेक लखि आतम न्यारो मुंज इषीका ते ज्यों मान॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थूल देह को भान न होवे स्वप्न माहि लखि आतम ज्ञान।
सूक्ष्म ज्ञान सुषुप्ति समय नहिं, सुख स्वरूप होय आतम भान
भासै भये समाधि अवस्था, निरावरण आतम, न अज्ञान।
ऐसे तीन देह व्यभिचारी, आतम अनुगत न्यारो जान।
पंचकोश ते आतम न्यारो, जानि सो जानहु ब्रह्म स्वरूप।
ताते भिन्न जो दीखे सुनिये, सो मानहु मिथ्या भ्रम कूप।
मिथ्या अधिष्ठान न विगारै, स्वप्न भीख न दरिद्री भूप।
सब कुछ कर्ता तऊ अकर्ता, तव अस अद्भुत रूप अनूप।
माटी को कारज घट जैसे, माटी ताके वाहरि मांहिं।
जल ते फेन तरंग बुद्बुदा, उपजत जल ते जुदे सो नाहिं॥
ऐसे जो जाको है कारज, कारन रूप पिछानहु ताहि।
कारन ईश सकल को सो मैं, लय चिन्तन जानहु विधि आहि॥

अर्थात संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ईवर है अतः संसार को ईश्वर रूप जानना चाहिये और वह ईश्वर मैं हूँ वह हमसे पृथक नहीं। जैसे तरंग को जलरूप और घट को मृत्तिका रूप जानना चाहिये उसी प्रकार अहं और जगतको ईश्वर रूप जानना चाहिये।

तर्क दृष्टि का प्रश्न १६ :—हे गुरु देव आप ने स्वप्न को मिथ्या बताया है और उसी के समान जाग्रत को भी बताया है। परन्तु स्वप्न तो जाग्रत की स्मृति मात्र है अथवा लिङ्ग शरीर स्थूल देह को त्यागकर इसी संसार के नदी पहाड़ आदि के दृश्य को निद्रा काल में देखने जाता है फिर स्वप्न को मिथ्या केसे माना जाय।

गुरु का उत्तर :—हे शिष्य यदि स्वप्न को जाग्रत की स्मृति मात्र मानें तो स्वप्न में पदार्थों का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होना चाहिये और जागने पर यह कहना चाहिये कि मैंने अमुक अमुक पदार्थों का स्मरण किया, यह नहीं कहना चाहिये कि मैंने अमुक अमुक पदार्थों को देखा। अतः सिद्ध हुआ कि स्वप्न जाग्रत की स्मृति नहीं है। ह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिष्य तू ने यह भी कहा कि लिङ्ग शरीर, स्थूल देह से निकलकर इसी संसार के पदार्थों को देखने जाता है यह भी असम्भव है क्योंकि यदि सूक्ष्म शरीर निकल जाय तो स्थूल देहमृतक हो जाय परन्तु मृतक नहीं होता। इसके अतिरिक्त प्राणों के निकले बिना सूक्ष्म देह स्थूल देह से निकल भी नहीं सकता क्योंकि रजोगुणका कार्य होने से प्राणों में क्रिया शक्ति है और सत्वगुण का कार्य होने से अन्तःकरण में ज्ञान शक्ति है क्रिया शक्ति नहीं। अतः प्राणों के स्थूल देह में रहते हुए अन्तःकरण स्थूल देह के बाहर नहीं निकल सकता है। अतः सिद्ध हुआ कि अन्तःकरण स्थूल देह से निकल कर इसी संसार में निद्राकाल में भ्रमण करने नहीं जाता। यदि रात्रि में सोया हुआ अन्तःकरण स्थूल देह से निकल कर इस संसार में भ्रमण करने के लिये जाता है तो रात्रि में सूर्य का दर्शन स्वप्न काल में नहीं होना चाहिये। स्वप्न में उन लोगों से व्यवहार नहीं होना चाहिये जो जाग्रत में मर चुके हैं। जिन लोगों से स्वप्नमें बात कीजाती है जाग्रतमें उनको स्वीकार करना चाहिये कि तुम मुझ से रात्रि में कहने आये थे। परन्तु ऐसा नहीं होता। अतः स्वप्न मन के अन्दर ही रज्जु सर्पवत अविद्या का परिणाम और अन्तःकरण साक्षी चेतन का विवर्त निद्राकाल में उत्पन्न होता है जैसे रज्जु के अज्ञान काल में रज्जु सर्प उत्पन्न होता है।

बिन सामिग्री उपजत जाते। स्वप्न सृष्टि सब मिथ्या ताते॥
देश काल को लेश न जामैं। सर्व जगत उपजत है तामैं॥
स्वप्न समान झूठ जग जानौ। लेश सत्त्य ताको मति मानौ॥
जाग्रत माँहि स्वप्न नहिं जैसे। स्वप्न माँहि जाग्रत नहिं तैसे॥

तर्क दृष्टि का प्रश्न १७ :—हे गुरुदेव यह संसार तो अनादि है जिसमें कोई ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाते हैं और असंख्य अज्ञानी बद्ध जन्म मरण के चक्र में पड़े हैं फिर यह स्वप्न के समान कैसे हुआ। यदि स्वप्न समान इसको मान भी लिया जाय तो बिना श्रव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णादिक साधन से ही अपने आप ही सब निद्रा टूटने पर मुक्त हो जायेंगे और यह संसार भी घड़ी दो घड़ी का होना चाहिये।

गुरु का उत्तर :—हे शिष्य! स्वप्न के समान अनहुआ संसार मन के फुरने के समय ही भासता है और मन के अफुर होने पर गायब हो जाता है जैसे प्रकाश के उदय होने पर वृक्ष की छाया भासने लगती है और प्रकाश के गायब होने पर छाया भी गायब हो जाती है। परन्तु स्वप्नकाल में जैसे स्वप्न की पृथ्वी तथा सूर्य अनादि काल के भासते हैं उसी प्रकार जब स्वप्नवत यह संसार दिखाई पड़ता है तब यह भी अनादि काल का प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में यह स्वप्नवत दृष्टि सृष्टि रूप है। चूँकि निद्रा दोष से क्षोभ को प्राप्त होकर व्यष्टि अविद्या स्वप्न रूप में परिणित होती है और निद्रा भंग होने पर स्वप्न अविद्या में लीन हो जाता है और जाग्रत अवस्था का ज्ञान होते ही स्वप्न में मिथ्या बुद्धि हो जाती है क्योंकि जो वस्तु जिसके अज्ञान से भ्रममात्र उत्पन्न होती है वह उसीके ज्ञान से निवृत्त हो जाती है। रज्जु सर्प भी रज्जु के अज्ञान से सत्य इव प्रतीत होता है और रज्जु का ज्ञान होते ही सर्प में मिथ्याबुद्धि हो जाती है। अधिष्ठान के ज्ञानके पहले भ्रम में सत्य बुद्धि नष्ट नहीं हो सकती। जैसे स्वप्न जाग्रत के अज्ञान से प्रतीत होता है और रज्जुमें सर्प रज्जुके अज्ञानसे प्रतीत होता है उसी प्रकार जाग्रत निज स्वरूप ब्रह्म के अज्ञान से प्रतीत होता है। यद्यपि जाग्रत संसार भी स्वप्न और रज्जु सर्प वत वास्तव में जिस काल में प्रतीत होता है उस काल में भी नहीं परन्तु ब्रह्म के अज्ञान पर्यन्त उसी प्रकार सत्य इव अनादि प्रतीत होगा जैसे निन्द्रा काल में स्वप्न सत्य इव अनादि प्रतीत होता है। चूंकि निन्द्रा सादि है इससे अपने आप भंग होकर स्वप्न से छुटकारा कर देती है। तथापि निद्रा भंग होने से स्वप्न की कारण में लयरूप ही निवृत्ति होती है अत्यन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्ति नहीं होती। परन्तु ब्रह्म का अज्ञान अनादि है। यह बिना श्रवणादिक साधन के नष्ट नहीं हो सकता। जब कभी शुद्ध अन्तः-करण वाला श्रवणादिक से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेगा तभी कल्पित अनादि अज्ञान और उसका कार्य जन्ममरण दूर होगा और जबतक अज्ञान बना रहेगा तबतक स्वप्नवत संसार में सुखबुद्धि और सत्यबुद्धि करते हुए और रज्जु सर्पवत देहोंमें अहंता ममता करते हुए जीव जन्म मरण में बराबर भटकता रहेगा। यद्यपि सुषुप्ति प्रलय में संसार को लय रूप निवृत्ति हो जाती है परन्तु अत्यन्त नवृत्ति ब्रह्म ज्ञान होने से ही होती है। अज्ञान में दो शक्ति हैं। एक विक्षेप शक्ति है जो स्वप्न वत अन हुए दृश्य को अधिष्ठान में दिखलाती है और दूसरी आवरण शक्ति है जो कल्पित स्वप्न वत दृष्टि सृष्टि रूप भ्रममात्र दृश्यमें सत्य बुद्धि तथा अहंता ममता उत्पन्न करती है और अधिष्ठान का ज्ञान नहीं होने देती। ब्रह्मज्ञान होते ही आवरणशक्ति और उसका कार्य नष्ट हो जाता है परन्तु विक्षेपशक्ति प्रारब्ध संस्कार पर्यन्त अपना कार्य जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति दिखलाया करती है। प्रारब्ध संस्कार समाप्त होने पर कार्य सहित विक्षेप शक्ति भी गायब हो जाती है। जैसे ब्राह्मण अनेक हैं और जाति एक है उसी प्रकार अभिमानी अनेक हैं और अज्ञान एक है। जो अभिमानी चिदाभास ब्रह्मसाक्षात्कार करके मुक्त हो जाता है उसको अज्ञान छोड़ देता है जैसे जो ब्राह्मण मर जाता है उसको जाति छोड़ देती है, जैसे मरने से बचे हुए ब्राह्मण जाति से युक्त रहते हैं उसी प्रकार जो मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए उन जीवों को अज्ञान नहीं छोड़ता। अर्थात् जैसे एक ब्राह्मण के मरने से ब्राह्मण जाति का नाश नहीं केवल मरने वाला ही जाति से मुक्त हुआ उसी प्रकार एक की मुक्ति से सब जीव अज्ञान से मुक्ति नहीं हो सकते। अतः हे शिष्य अपना उद्धार स्वयं करना होगा। गुरु के मुक्त होने से शिष्य मुक्त नहीं हो सकता।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri